बाल विज्ञान पत्रिका अगस्त 2014

चकमक

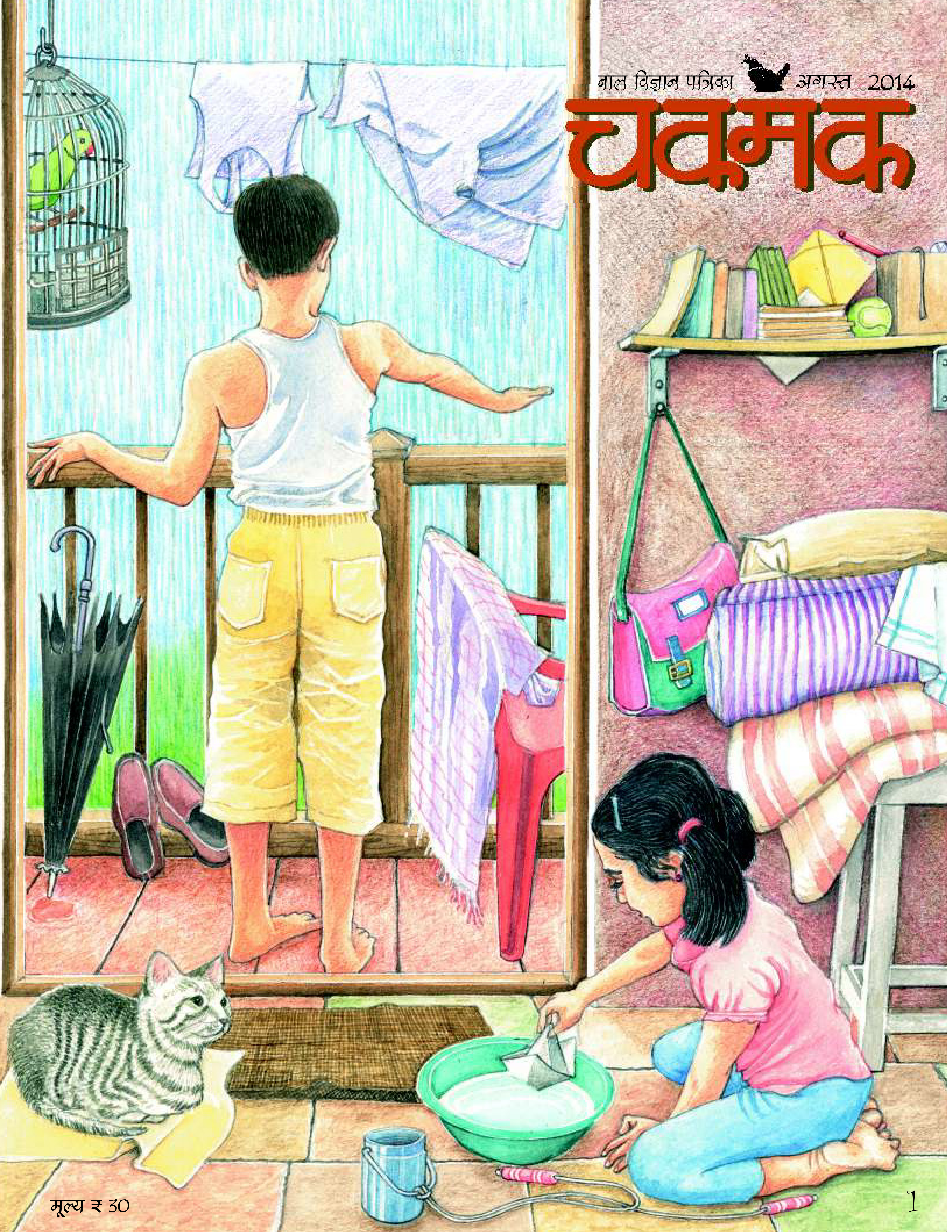

मूल्य ₹ 30

सुनो मेरे भाई

होती है गाँवों में कठिनाई
होती है नालों की कमी
देखो तो सड़कों पर पानी, काई है जमी
इसी से गिरती है बुढ़िया माई
होती है गाँवों में कठिनाई
सुनो मेरे भाई।

गाँवों में डॉक्टर नहीं रहते
पैसों के लिए शहर जा बसते
लोग मरते बीमारी से
पैसा रहता तो ले जाते गाड़ी से
हर जगह सुनते हैं रुलाई
होती है गाँवों में कठिनाई
सुनो मेरे भाई।

बिजली कम रहती है गाँव में
बाधा आती हर काम में
नहीं हो पाती है पढ़ाई
होती है गाँवों में कठिनाई
सुनो मेरे भाई।

–प्रदीप कुमार, सातवीं,
परिवर्तन, सिवान, बिहार

बाल विज्ञान पत्रिका

चकमक

अंक 335 अगस्त 2014

4 बोली रंगोली
6 एक था हाजी एक था नाजी
8 मटियाबुर्ज़ की यात्रा
12 लोमड़ी को देखते ही...
13 चलती हुई पहाड़ी है
14 क्यों हो गई कुछ दवाइयाँ बेकार?
16 मेरा पन्ना
19 नाम में क्या रक्खा है...
20 लँगड़ा शहर - ताल्लिन्न
27 वो घर जहाँ मैं जन्मा था
28 पन्ना टाइगर रिज़र्व में गुज़रे वो खूबसूरत दिन...
31 माथापच्ची
32 अन्दर के और बाहर के
34 एक कहानी
40 कागभगोड़ा
42 बोली रंगोली
43 चित्रपहेली
44 वो गुमनाम-सी...

हाशिए के चित्र:
अरविन्द गुप्ता द्वारा अनुवादित
स्पीकिंग स्टोंस
(अबुल फज़ल हिम्मती-ऐ-अहोई)
और फन विद सीड्स
(मरियम रहमती ऐविनी) से

आवरण चित्र
दिलीप चिंचालकर

सम्पादन
सुशील शुक्ल
शशि सबलोक

सहायक सम्पादक
कविता तिवारी

उप सम्पादक
मिताली अहीर

विज्ञान सलाहकार
सुशील जोशी

डिज़ाइन
दिलीप चिंचालकर

जो चीज़ सबसे सुन्दर लग रही थी वह थी घरों की छतें। यह एक अनूठा दृश्य था जिसका वर्णन करना मेरे लिए असम्भव है। 20

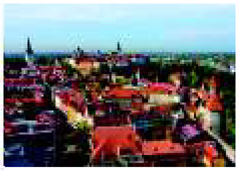

"...या फिर तुम्हें लगा कि लोमड़ी मुझसे ज़्यादा ताकतवर है?" शेर बोला। 12

40 चोटी को काकभगोड़े की गर्दन के पीछे से आगे की ओर ले आओ

वे पुरुषों के नामवाले तूफानों से कहीं ज़्यादा विनाशकारी होते हैं। 19

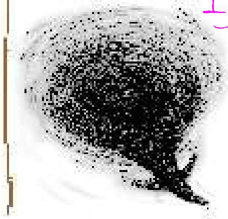

34 "लोरमी! अब तुम जाओ। मैं डाल पर बैठे-बैठे बाढ़ उतरने का रास्ता देखूँगा।"

इस अंक में

4

कलाई पर इसे बाँधा
मगर फिर भी ये उड़ता है
बदल जाता है ये लेकिन
न रुकता है न मुड़ता है

गुलज़ार

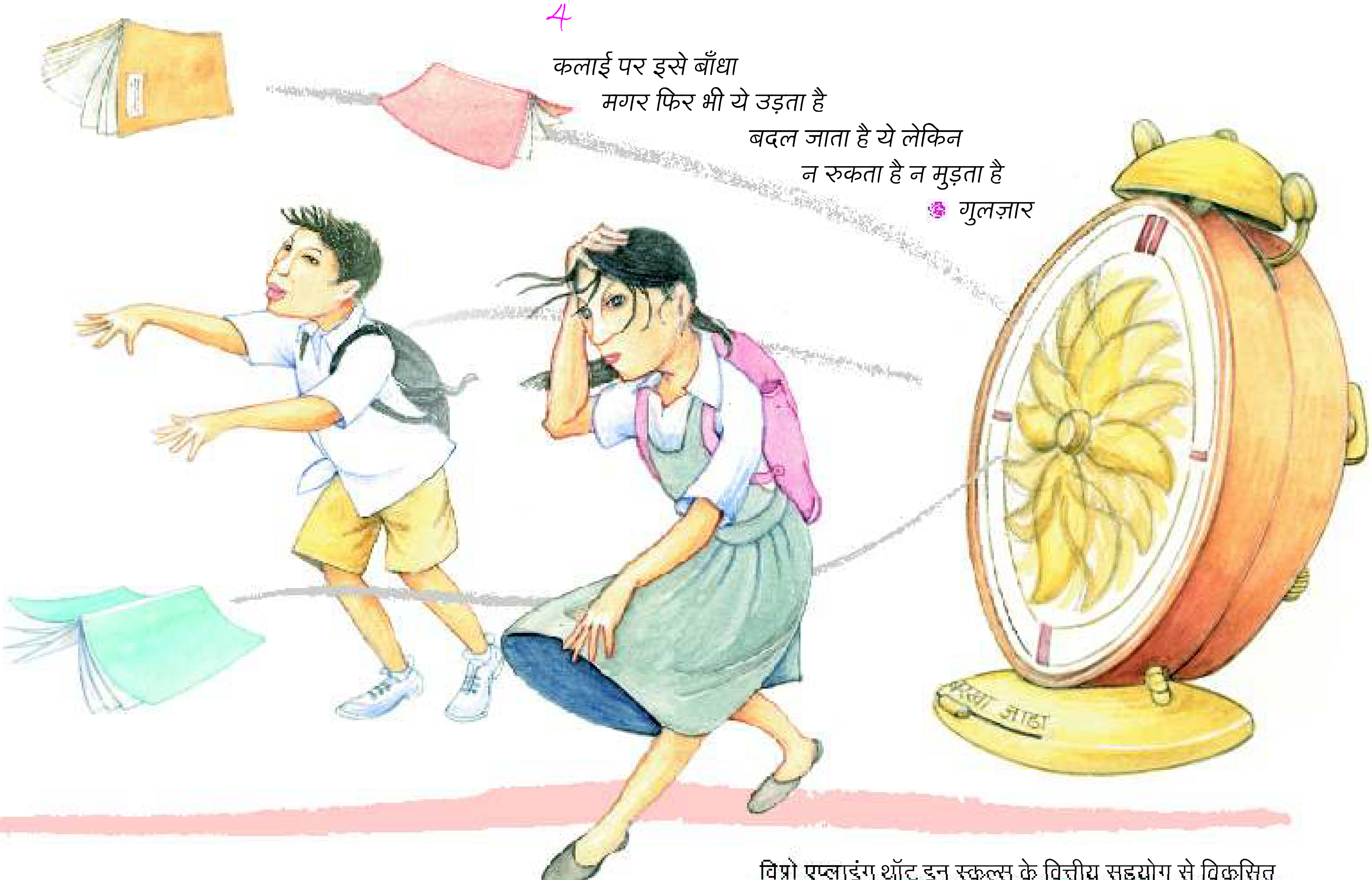

विप्रो एप्लाइंग थॉट इन स्कूल्स के वित्तीय सहयोग से विकसित

वितरण
झनकराम साहू

सहयोग
वरुण ग्रोवर
प्रभात
मिहिर
कमलेश यादव

सदस्यता शुल्क

एक प्रति:	30.00	(व्यक्तिगत)
	50.00	(संस्थागत)
वार्षिक:	300.00	(व्यक्तिगत)
	500.00	(संस्थागत)
तीन साल:	800.00	(व्यक्तिगत)
	1350.00	(संस्थागत)
आजीवन:	4000.00	(व्यक्तिगत)
	6000.00	(संस्थागत)

सभी डाक खर्च हम देंगे।
चन्दा (एकलव्य के नाम से बने) मनीऑर्डर/चैक से भेज सकते हैं। भोपाल के बाहर के चैक में 80.00 रुपए अतिरिक्त जोड़ें।

एकलव्य
ई-10, शंकर नगर, बीडीए कॉलोनी, शिवाजी नगर, भोपाल, म.प्र. 462 016
फोन: (0755) 4252927, 2550976, 2671017
फैक्स: (0755) 2551108
e mail - chakmak@eklavya.in
e mail - circulation@eklavya.in
www.chakmak.eklavya.in
www.eklavya.in

बोलूँगोली

कलाई पर इसे बाँधा
मगर फिर भी ये उड़ता है
बदल जाता है ये लेकिन
न रुकता है न मुड़ता है

- गुलज़ार

पहले छह

–पुष्कर, छठी, डीपीएस, पटना

– अक्षितारा, दिल्ली

– रामबाबू,
आँचल समूह, दिगन्तर स्कूल, जयपुर

दोस्तो, तुम्हारे चित्रों के क्या कहने! कभी-कभी लगता है कि पूरी चकमक में बस तुम्हारे बनाए चित्र शाया कर दें। तुम्हारे बेहतरीन चित्रों का ही कमाल है कि इस बार गुलज़ार साब ने भी पाँच की जगह छह चित्र चुने। इन छह चित्रकारों को उपहार में चकमक की एक साल की सदस्यता मिलेगी। पन्द्रह चित्र और भी हैं जो बहुत सधे हैं। इन्हें तुम पेज 42 पर देख सकते हो।

सितम्बर की कविता है ..

किताब पढ़ते-पढ़ते एक बार मस्ती में
गिरे नदी में दोनों जा रहे थे कश्ती में

- गुलज़ार

– शुभम कुमार, पाँचवीं, डीपीएस पटना

– आदित्य एस., चौथी, डीपीएस, लुधियाना

– पी लोगेश, आठवीं, केन्द्रीय विद्यालय 1, भुज, गुजरात

हो सकता है बड़े तुम्हें इसके अर्थ बताएँ। उनके अर्थ सुनो-समझो पर चित्र अपने मन का ही बनाओ...। कोशिश करना कि तुम्हारा चित्र हमें 14 अगस्त तक मिल जाए। चित्र के साथ अपना पता, कक्षा, फोन नम्बर ज़रूर लिखना। हमारा पता है -

चकमक, एकलव्य, ई-10,
शंकर नगर,
शिवाजी नगर,
भोपाल -16
(फोन - 09425010115)

एक था हाजी एक था नाजी

स्वयं प्रकाश

1

अपनी फटी-पुरानी छतरी पकड़े हाजी बाज़ार से गुज़र रहे थे। अचानक उन्हें एक दुकान दिखाई दी। उस पर बोर्ड लगा था – नाजी अम्ब्रैला हाउस। हाजी ने सोचा चलो नई छतरी ले ही लेते हैं। न भी लें तो भाव तो पूछ ही लेंगे।

दुकान में उन्होंने कई छतरियाँ देखीं। उनके भाव पूछे। लेकिन कोई भी छतरी उन्हें पसन्द नहीं आई। वे नई छतरी लिए बगैर ही दुकान से बाहर आ गए और घर की तरफ चल पड़े।

अचानक बूँदाबाँदी होने लगी और हाजी ने पाया कि वे अपनी पुरानी छतरी भी उस दुकान में ही भूल आए हैं – क्या नाम था उसका – नाजी अम्ब्रैला हाउस!

पलटकर फिर उस दुकान में पहुँचे और बोले, "भैया हम थोड़ी देर पहले आए थे!"

"हाँ हाँ, क्या हुआ अंकल?" दुकानदार ने पूछा।

"भैया, हम अपनी छतरी यहाँ भूल गए थे। अभी रस्ते में ध्यान आया।"

"कौन-सी छतरी थी आपकी अंकल?" दुकानदार ने पूछा।

"अब भैया कोई-सी भी दे दो! हमें आपसे झगड़ा थोड़ी करना है!" हाजी बोले।

2

घूमते-घामते नाजी शहर की एक बहुत बड़ी मिठाई की दुकान "हाजी मिष्ठान्न भण्डार" के सामने पहुँचे।

"आपके पास मिक्स मनोरम मिठाई है?" नाजी ने पूछा।

"ऐसी तो कोई मिठाई नहीं है हमारे पास।"

"अरे!! चलो कोई बात नहीं। बूँदी के लड्डू तो होंगे?"

"हाँ।"

"ठीक है। तो एक किलो बूँदी के लड्डू, एक किलो इमरती और एक किलो रसगुल्ले ज़रा तौल दीजिए।"

"और कुछ ?"

"हाँ, एक किलो रबड़ी भी, अगर ताज़ा हो तो।"

"एकदम ताज़ा है।"

"ठीक है। कोई बड़ा-सा थाल है आपके पास?"

"हाँ है न। थाल का क्या करेंगे?"

"आ गया? ठीक है। इन चारों चीज़ों को इस थाल में निकाल लीजिए और किसी बड़े-से खुरपे से इन्हें अच्छी तरह मिलाकर बर्फी की तरह जमा दीजिए ।

"जैसा आप कहें। वैसे पहले हमने ऐसा कोई ग्राहक देखा नहीं।"

"कोई बात नहीं। चलिए, हो गया? इसे कहते हैं मिक्स मनोरम मिठाई। अब इसमें से दो रुपए की काटकर मुझे दे दीजिए!"

* * *

हाजी नाजी से पहली बार मिले तो गदगद होते हुए बोले, "सर! मुझे आपसे मिलकर बहुत खुशी हो रही है। मैंने आपके बारे में बहुत सुना है।"

"सुना होगा," नाजी बोले "लेकिन आप साबित नहीं कर सकते।"

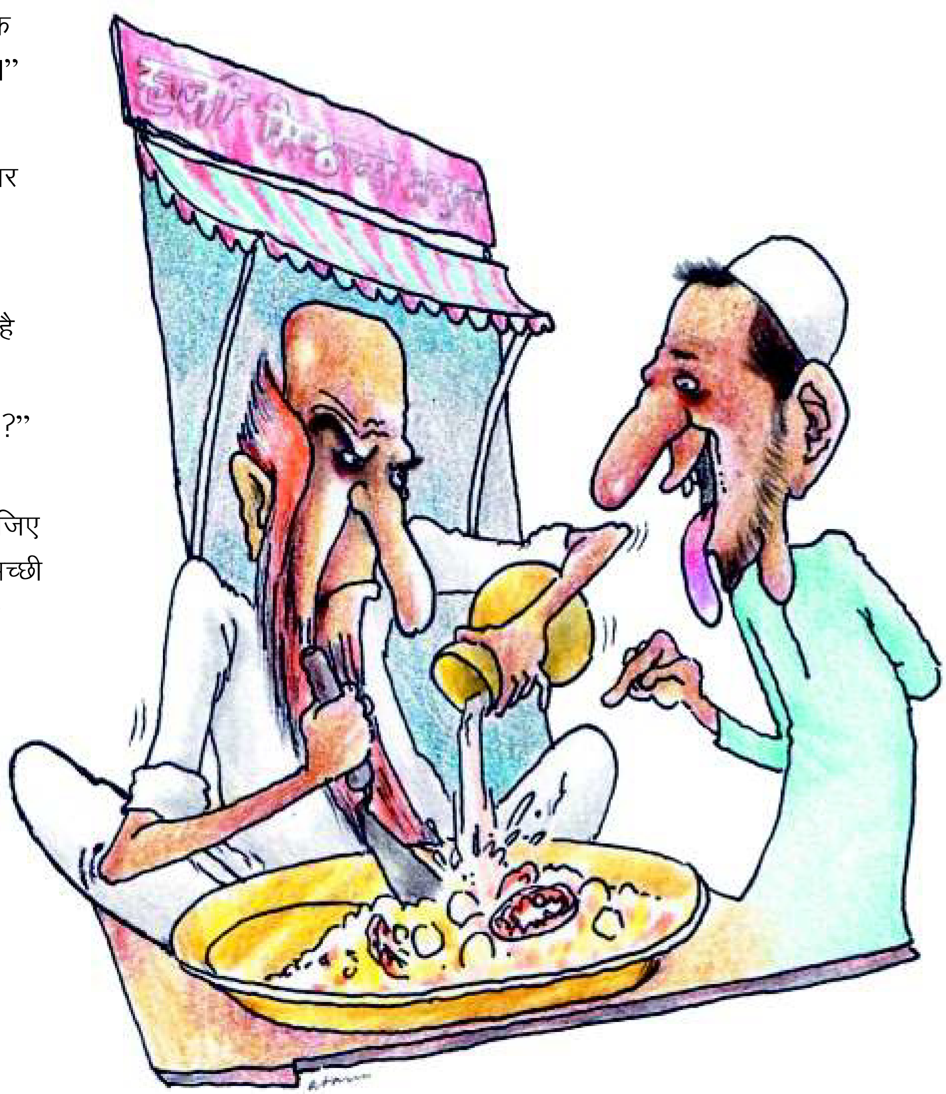

चित्रः अतनु राय

मटियाबुर्ज़ की यात्रा

कोलकाता की एक संस्था विक्रमशिला के नब दिशा केन्द्रों के 50 बच्चों ने एक अनोखा काम किया। उन्होंने कोलकाता के मटियाबुर्ज़ इलाके में घूम-घूम के और लोगों से बात करके मटियाबुर्ज़ का इतिहास इकट्ठा किया। इस प्रयास की एक बानगी...

सम्पादन एवं अनुवादः यायावर एवं स्वयंप्रकाश

कोलकाता के गार्डन रीच क्षेत्र में स्थित मटियाबुर्ज़ वह स्थान है जहाँ अवध के आखरी नवाब वाजिद अली शाह अपने राज्य से निकाले जाने के बाद रखे गए थे। लेकिन नवाब थे! अकेले कैसे आते? तो उनके साथ सेवादारों-खिदमतगारों का अमला भी आया। यहाँ तक कि जब कोलकाता के फोर्ट विलियम किले में नज़रबन्द रखे गए तो उन्हें तोप की सलामी भी मिलती रही और वज़ीफा भी मिलता रहा।

नवाब वाजिद अली शाह पैदा हुए थे सन् 1822 में, अवध के नवाब बने 1847 में, यानी पच्चीस बरस की उम्र में और हटाए गए सन् 1856 में यानी नौ साल राज करने के बाद!

नवाब के आने से पहले मटियाबुर्ज़ क्या था? कुछ नहीं! हुगली नदी के किनारे की उजाड़ जगह जहाँ कुत्ते और सियार घूमते रहते थे और चोर-लुटेरे रात को छिपने आ जाते थे! लेकिन नवाब के आने के बाद धीरे-धीरे मटियाबुर्ज़ इतना गुलज़ार हो गया कि लोग उसे दूसरा लखनऊ कहने लगे!

अब्दुल हलीम "शरर" ने लखनऊ पर लिखी अपनी किताब में इसके बारे में विस्तार से लिखा है।

नवाब ने उस इलाके में सबसे पहले एक शाही इमामबाड़ा बनवाया जिसमें नमाज़ पढ़ी जाती है। और ताज़िए रखे जाते हैं। फिर उसने एक शाही चिड़ियाघर बनवाया जहाँ दूर-दूर से तरह-तरह के रंग-बिरंगे पक्षी और जानवर लाकर रखे गए। यहाँ तक कि साँप भी! शायद यह दुनिया का पहला ऐसा चिड़ियाघर था जिसमें साँप भी रखे गए थे!

लखनऊ की यादों को ज़िन्दा रखने के लिए नवाब की इच्छा के अनुसार वहाँ बड़ी संख्या में हुनरमन्द दर्ज़ियों, संगीतकारों, कातिबों (सुन्दर हस्तलिपि लिखनेवालों), हकीमों और दरबारियों को लाकर बसाया गया। नवाब अपने गाने और नाचने के शौक के लिए मशहूर था।

इसके अलावा नवाब ने मटियाबुर्ज़ में शाही मस्ज़िद, शाही अस्तबल आदि भी बनवाए। 31 साल यहाँ रहने के बाद 87 साल की उम्र में कोई ज़हरीली चीज़ खाने में आ जाने की वजह से नवाब की मृत्यु हो गई।

नवाब की मृत्यु के बाद अँग्रेज़ों ने नवाब के तमाम रिश्तेदारों और नौकर-चाकरों को मटियाबुर्ज़ से निकाल दिया और इमामबाड़ा तथा शाही मस्ज़िद को छोड़कर नवाब द्वारा बनवाई गई तमाम इमारतों को तुड़वा दिया गया। कभी लखनऊ से बुलवाए गए तमाम लोग और उनके आश्रित या तो इधर-उधर हो गए या वापस लखनऊ लौट गए।

मटियाबुर्ज़ की यात्रा

एक दिन स्कूली बच्चों का एक दल मटियाबुर्ज़ देखने और उसके बारे में जानकारी हासिल करने यहाँ पहुँचा।

* *बाबुल मोरा नैहर छूटो ही जाय, चार कहार मिल मोरी डोलियाँ सजावें*

उन्होंने देखा कि इमामबाड़ा अब भी सलामत है, उसमें बेल्जियन शीशे के शानदार झाड़फानूस लटक रहे हैं और चाँदी के ताज़िए भी रखे हुए है! बच्चों ने नवाब के हाथ के लिखे दस्तावेज़ और उसकी मोहर भी देखी। बच्चों ने एक बड़ा-सा घण्टा भी देखा जिसे समय बताने के लिए हर एक घण्टे के बाद बजाया जाता था।

बच्चे इमामबाड़े की देखरेख करनेवाले चचा से और बस्ती के कई अन्य बुज़ुर्गों से भी मिले। इन्हीं में एक श्री अमीरूल्ला खान भी मिल गए जिनके दादा कसीदुल्ला खान नवाब साहब के खास सिपाही थे।

बच्चों को बिट्टू नाम का एक व्यक्ति भी मिला जो आजकल मोजे बुनकर गुज़ारा करता है। पता चला उसका असली नाम सैयद नदीम अख्तर है और वह नवाब साहब की चौथी पीढ़ी का वंशज है। उससे मिलकर बच्चों को ऐसा लगा जैसे के इतिहास के किसी पात्र को छूकर देख रहे हों!

वहाँ के लोगों ने यह भी बताया कि इस जगह का नाम मटियाबुर्ज़ क्यों पड़ा! पता चला नवाब साहब को सफाई बेहद पसन्द थी। इधर रोज़ नदी के साथ काफी मिट्टी बहकर आती थी! नवाब साहब का हुक्म था कि उसकी फौरन सफाई की जाए। सफाई रोज़ की जाती और मिट्टी का एक तरफ ढेर लगा दिया जाता। यही ढेर धीरे-धीरे एक टीला बन गया और लोग इसे बोलचाल की भाषा में मटियाबुर्ज़ कहने लगे।

बच्चों ने शाही अस्तबल और कब्रगाह को भी देखा। मज़े की बात यह हुई कि बच्चों को वहाँ एक पान की दुकान भी मिल गई जो पाँच पीढ़ियों से चल रही है। नवाब के ज़माने में यह एक मिठाई की दुकान थी जो सुबह चार बजे तक खुली रहती थी। दुकानवाले के पास उस ज़मीन की कुछ फोटो भी थीं।

बच्चे नवाब के पड़पोते अमजद अली मिर्ज़ा से भी मिले जिन्होंने उन्हें उस ज़माने की कई तस्वीरें दिखाईं।

एक बच्चे के मन में सवाल उठा कि जब इतने सारे लोग यहाँ रहते थे तो वे करते क्या थे और उनकी आमदनी का ज़रिया क्या था? पूछने पर पता चला कि मटियाबुर्ज़ के दर्ज़ी बेहद हुनरमन्द थे। कलकत्तावालों को उनका काम इतना पसन्द आया कि धीरे-धीरे इन्हें न सिर्फ बंगाली ज़मींदारों के बल्कि अँग्रेज़ों के भी आर्डर मिलने लगे। यहाँ के पतंग बनानेवाले भी काफी होशियार थे और उन्होंने बंगालियों में भी पतंगबाज़ी का शौक पैदा कर दिया था। यहाँ की औरतें ज़री का काम बहुत बारीकी से करती थीं। धीरे-धीरे सारे बंगाल में उनकी शोहरत फैल गई और उन्हें खूब काम मिलने लगा।

नवाब ने सबसे पहले एक शाही इमामबाड़ा बनवाया।

चित्रः दिलीप चिंचालकर

मोरा अपना बेगाना छूटो ही जाय, बाबुल मोरा नैहर छूटो ही जाय...- वाजिद अली

ज़री का काम

ज़री के छोटे-से कारखाने के मालिक बबलू ने बताया कि यहाँ लोगों को इस धन्धे के बिचौलियों के ज़रिए काम मिलता है। कारीगर नई डिज़ाइन बनाकर बिचौलियों को भेजते हैं जिनकी बाज़ार में पहुँच है। जो नमूने लोग पसन्द करते हैं उसकी माँग कुछ समय तक बनी रहती है। साल में त्यौहारों व शादी के छह महीनों में ज़री का काम करनेवाले व्यस्त रहते हैं। बाकी समय में माँग न रहने से उनका काम कम हो जाता है। औसतन कारीगर को एक घण्टा काम के लिए आठ से बारह रुपए मिलते हैं। पिछले कुछ सालों से उन्हें साड़ियों का दाम कम मिलने लगा है। कुछ साल पहले जो साड़ी 2500 रुपए में बिकती थी अब 1500 रुपए में बिकती है। बेरोज़गारी बढ़ने से कम दर पर काम करनेवाले कारीगरों की संख्या बढ़ रही है। पश्चिम बंगाल में मिदनापुर ज़िले में ज़री कारीगर कम दर पर काम करने पर राज़ी हो जाते हैं। इससे श्रम बाज़ार मटियाबुर्ज़ से स्थानान्तरित होकर मिदनापुर चला गया है।

मटियाबुर्ज़ भारत में फैशनेबल वस्त्र उद्योग का महत्वपूर्ण केन्द्र बन गया। आज मटियाबुर्ज़ के लगभग 56 प्रतिशत युवा वस्त्र उद्योग से जुड़े हैं। मटियाबुर्ज़ में बने वस्त्र भारत के अलावा बंग्लादेश, नेपाल, भूटान, श्रीलंका जैसे पड़ोसी देशों में भी निर्यात किए जाते हैं।

बच्चों ने पूछा कि क्या ये कारीगर आज भी हैं और क्या हम उनसे मिल सकते हैं? बच्चों को इनसे मिलवाया गया। बच्चों ने पतंगसाज़ से पतंग बनाना सीखा। बच्चों ने देखा कि ज़री का काम करनेवालों की आर्थिक स्थिति आज अच्छी नहीं है, क्योंकि उनकी मेहनत का एक बड़ा हिस्सा दलाल खा जाते हैं।

उर्दू, शायरी और ठुमरी

कहा जाता है कि मटियाबुर्ज़ के लोग खालिस उर्दू बोलते थे व संगीत व शायरी के शौकीन थे। ठुमरी तो बहुत ही पसन्द की जाती थी। खासकर वाजिद अली शाह की रचनाएँ जो लखनऊवासियों को खुशी व रोमांच से भर देती थी। "नीर भरन कैसे जाऊ" जैसे गाने सभी को मोह लेते थे। "जब छोड़ चले लखनऊ नगरी" गाना सुनकर नवाब बहुत देर खामोश बैठे रहे और फिर बोले, "इस सारे समय मानो मैं स्वप्न लोक में था। मानो किन्हीं अदृश्य हाथों ने मुझे केसरबाग बारादरी में पहुँचा दिया था। आह, मैं क्या खूबसूरत जगह को छोड़ आया! अब तो उसकी केवल मीठी यादें बाकी हैं।"

आज का मटियाबुर्ज़

द टेलिग्राफ अखबार में सौमित्र दास लिखते हैं – मटियाबुर्ज़ यानी गन्दे अहातोंवाले एक मंज़िला मकानों की भरमार, खुली नालियाँ और भीड़ भरे बाज़ार। झाड़ियों से अटे मैदान और जलकुम्भियों से भरे तालाब। अनगिनती कारखानों के शेड, गार्डन रीच का विशाल जहाज़ निर्माण व मरम्मत कारखाना व उसकी क्षितिज पर धुँधली दिखाई देती विशालकाय लोहे की मशीनें। आज कलकत्ता का यह इलाका किसी भी तरह विशिष्टता का दावा नहीं कर सकता।

गार्डन रीच कलकत्ता शहर के पश्चिम में हुगली किनारे स्थित है। हुगली बंगाल की खाड़ी में मिलती है इसलिए यहाँ जहाज़ों के आने-जाने व बन्दरगाह की सुविधा है। यहीं केदारपुर गोदी है जहाँ जहाज़ों से माल उतारा-चढ़ाया जाता है। हम गार्डन रीच जहाज़ निर्माण व इंजीनियरिंग संस्थान गए। 1919 से यहाँ जहाज़ निर्माण हो रहा है।

2001 में मटियाबुर्ज़ की जनसंख्या 2,83,314 थी। यह मध्य कलकत्ता से जिस सड़क से जुड़ा है वह वाजिद अली शाह के नाम पर है। हुगली के उस पार शिवपुर का प्रसिद्ध बॉटेनिकल गार्डन है। मटियाबुर्ज़ एक मुख्य औद्योगिक स्थान है। यहाँ ऊर्जा संयंत्र व वॉटर पम्पिंग स्टेशन है जहाँ से कलकत्ता शहर के बड़े क्षेत्र को जल प्रदाय किया जाता है। जहाज़ निर्माण व मरम्मत कारखाने में युद्ध पोत भी बनाए जाते हैं। यह देश के बड़े वस्त्र उत्पादकों में से एक

है। यहाँ का साप्ताहिक बाज़ार भी देश में सबसे बड़ा है। ईंट भट्टों में भी यहाँ बड़ी संख्या में लोग काम करते हैं। मटियाबुर्ज़ की प्रसिद्धी सबसे बड़े पतंग उत्पादक के रूप में भी है। मुन्नू बाज़ार में पतंग की कुछ दुकानें नवाब के समय से हैं।

पुराने मटियाबुर्ज़ का आकर्षण व वैभव खत्म होने के साथ-साथ लोग नवाब को भी भूल गए। नवाब के समय के अब केवल इमामबाड़ा व शाही मस्ज़िद ही बचे हैं।

नवाब के मरने के बाद अँग्रेज़ों ने उनके सारे रिश्तेदारों, कर्मचारियों व अन्य आश्रितों को उनके महलों से निकाल दिया। तथा इमामबाड़ा व शाही मस्ज़िद को छोड़कर बाकी सारी इमारतों को तुड़वा दिया या नीलाम कर दिया। लखनऊ से आए लोगों की हालत बहुत बुरी हो गई। उनमें से कई वापस लखनऊ चले गए जहाँ उनका कुछ नहीं बचा था। अँग्रेज़ों ने मटियाबुर्ज़ से अवध राज्य सत्ता के सारे निशान मिटा दिए। वे सुनिश्चित करना चाहते थे कि ब्रिटिश शासन के खिलाफ भविष्य में कोई ऐसी चीज़ न रहे जिसके इर्द-गिर्द लोग विद्रोह के लिए जमा हों।

हाल के सालों में सरकार द्वारा कुछ इमारतों की मरम्मत कर उन्हें पुराने स्वरूप में लाया जा रहा है ताकि अवध के आखिरी नवाब की विरासत के कुछ निशानों को तो मिटने से बचाया जा सके।

एक दिलचस्प किस्सा

नवाब वाजिद अली के पास बेशकीमती झाड़फानूस थे। उस ज़माने में एक-एक की कीमत दो लाख रुपए आँकी गई थी। एक बार एक नौकर के हाथ से एक झाड़फानूस साफ करते समय टूट गया। आवाज़ सुनकर नवाब आया तो नौकर डर के मारे काँपने लगा। मगर नवाब तो यह कहने आया था कि उसने इससे पहले इतनी सुरीली आवाज़ कभी नहीं सुनी थी। और उसने कुछ और झाड़फानूस तोड़ने का आदेश दिया ताकि वह उस मधुर आवाज़ को फिर सुन सके।

पतंग बनाना

नवाब के पतंग प्रेम ने मटियाबुर्ज़ के कई लोगों को रोज़गार उपलब्ध कराया। पतंग बनाने में नए-नए प्रयोग करनेवालों को नवाब ने प्रोत्साहन दिया। यहाँ आज भी पतंग निर्माण एक महत्वपूर्ण उद्योग है। इससे बड़ी संख्या में युवा जुड़े हैं। मटियाबुर्ज़ में पतंग बनाने के 50-60 कारखाने हैं। इस व्यापार में भी बिचौलिए हैं।

हम एक बीस साल पुरानी पतंग की दुकान के मालिक फिरोज़ से मिले। उन्होंने बताया कि पतंग बनाने के लिए खास तरह की लकड़ी आसाम से खरीदी जाती है। और कागज़ बिलासपुर के अलावा चीन, ऑस्ट्रेलिया व जर्मनी से आता है। सारा सामान कलकत्ता के बड़े बाज़ार से खरीदा जाता है। एक कारीगर को 200 पतंगें बनाने के लिए लगभग 150 रुपए मिलते हैं। पतंग कारखाने में पुरुष कागज़ काटने व उस पर लकड़ी की सींके सिलने का काम करते हैं। घर पर लकड़ी के फ्रेम पर धागा व्यवस्थित किया जाता है जिसमें महिलाएँ व बच्चे मदद करते हैं। महिलाएँ बाँस को छीलकर सींके बनाती हैं। एक हज़ार सींके बनाने का पारिश्रमिक 15 रुपए है। एक परिवार औसतन 60 रुपए रोज़ कमा लेता है।

पतंग का धन्धा चार महीने चलता है। पतंगों के सुरक्षित भण्डारण की उचित सुविधा यहाँ नहीं है। हमारे जीवन में मीडिया का दखल व क्रिकेट व अन्य खेलों की लोकप्रियता के कारण पतंगों के प्रति आकर्षण कम हुआ है। इससे इनकी माँग भी घटी है। मटियाबुर्ज़ की पतंगें कलकत्ता से ज़्यादा अन्य शहरों में बिकती हैं।

लोमड़ी को देखते ही...

रवि

शेर सो रहा था। उसकी बगल में एक साँप कुँडली मारे सोया पड़ा था। एक खरगोश ने यह देखा तो डर गया। "अरे बाप रे! साँप ने शेर को डस लिया तो? शेर तो गया! किसी तरह इसे उठाता हूँ।" खरगोश ने सोचा। डरते-डरते वो आगे बढ़ा और शेर की पूँछ खींच ली।

"कौन है ये नामाकूल जिसने मुझे जगा दिया?" शेर चिंघाड़ा।

"माफ करना शेर भाई, पर आपकी बगल में साँप देखा तो मुझसे रहा न गया। इसलिए जगा दिया।" खरगोश बोला।

शेर ने घूमकर देखा। और साँप को देखते ही भाग लिया। फिर खरगोश से बोला, "तुम तो बहुत बहादुर हो यार। मुझसे दोस्ती करोगे? आज से अपन पक्के दोस्त। आज से इस जंगल में कोई तुम्हें परेशान नहीं कर सकता। मज़े से बिना डर के रहो।"

यह सुनकर खरगोश खुश हो गया।

उसी वक्त घने जंगल से एक लोमड़ी निकली। उसे देखते ही खरगोश रफूचक्कर हो गया। शेर ने यह देखा तो उसे बड़ा धक्का लगा।

उसी शाम शेर खरगोश के पास गया। और पूछा, "तुम भागे क्यों थे?"

"लोमड़ी जो आ गई थी।"

"पर क्या मैं नहीं था वहाँ तुम्हें बचाने के लिए?"

"थे तो।"

"तो मुझपे यकीन नहीं था? या फिर तुम्हें लगा कि लोमड़ी मुझसे ज़्यादा ताकतवर है?" शेर बोला।

"नहीं शेर भाई मैं ऐसा बिलकुल नहीं सोचता।"

"तो भागे क्यों?"

"वो क्या है ना ये तो खरगोशों की आदत ही होती है...लोमड़ी के दिखते ही जान बचाकर भागना।"

(युरेका से साभार, अनुवाद- अनु एलैक्ज़ैंडर)

चित्रः अतनु राय

चलती हुई पहाड़ी है

प्रभात

हाथी मेरे साथी तू बगीचा है या बाड़ी है
चूहे कहते हैं – ये चलती हुई पहाड़ी है।
ये चलती हुई पहाड़ी है।

चूहे तेरी पीठ पे फुटबॉल खेलते
चींटे तेरे सिर पे बॉलीबॉल खेलते।
खरगोश तेरी सूँड पे आ-आ के फिसलते
शेर भालू पेट के नीचे से निकलते।

तू पुल है तेरे नीचे से
निकली घोड़ा-गाड़ी है।
चूहे कहते हैं – ये चलती हुई पहाडी है।

दिनरात लटके रहते तेरी पूँछ पे लँगूर
मच्छर करें आँखों में मटरगश्तियाँ भरपूर।
कान हैं तेरे कि किसी शहर की गलियाँ
पचड़े में पड़ गई हैं इन्हें देख तितलियाँ।

कभी-कभी तू लगे इधर का
सबसे बड़ा कबाड़ी है।
चूहे कहते हैं – ये चलती हुई पहाड़ी है।

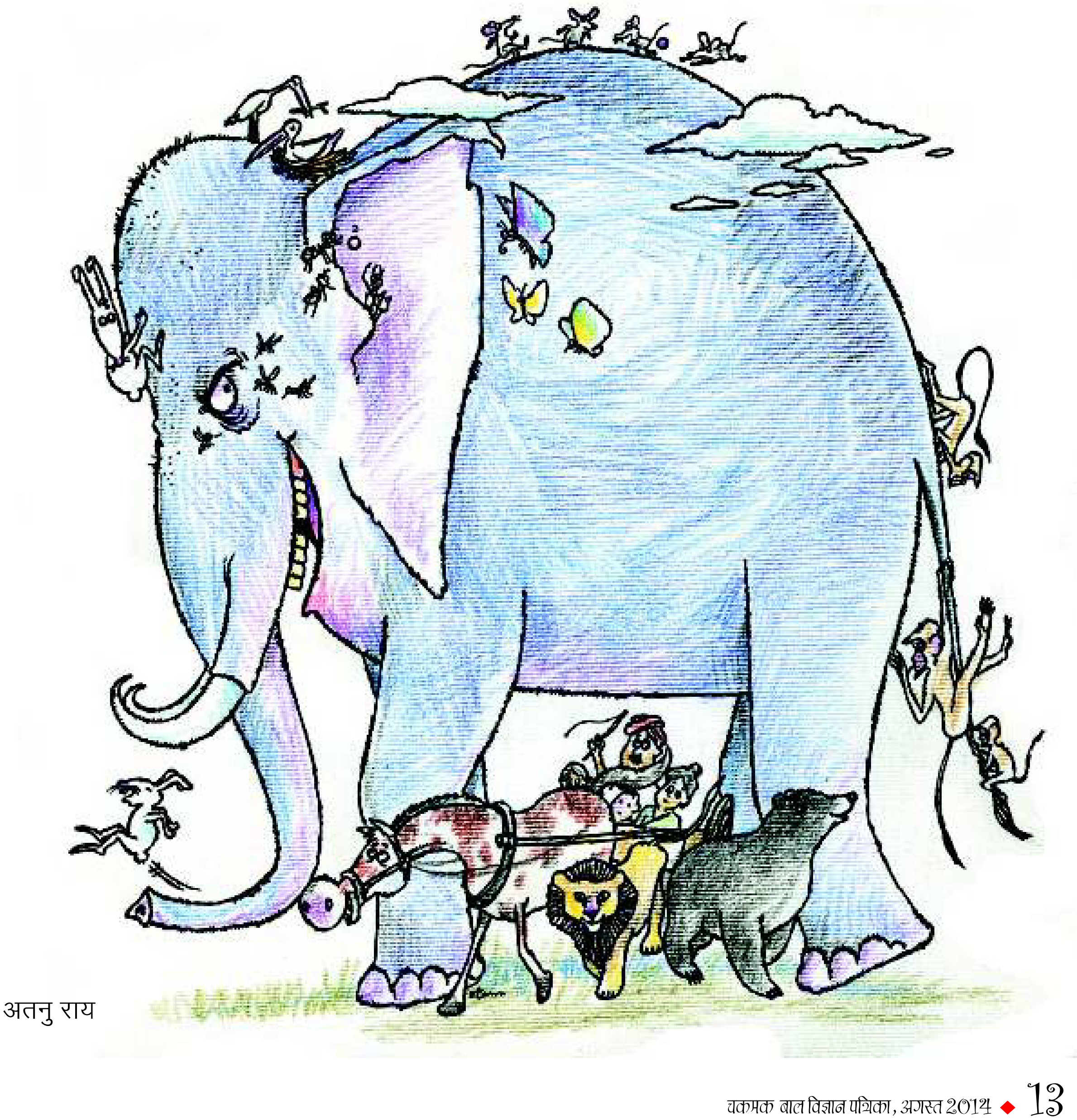

चित्रः अतनु राय

क्यों हो गईं कुछ दवाइयाँ बेकार?

सुशील जोशी

हमारी बीमारियाँ तरह-तरह की होती हैं। इनमें से एक तरह की बीमारियाँ वे हैं जो तब होती हैं जब कोई सूक्ष्मजीव हमारे शरीर में प्रवेश कर जाता है। हरेक सूक्ष्मजीव के शरीर में घुसने पर बीमारी नहीं होती। वास्तव में हमारे शरीर में बड़ी संख्या में सूक्ष्मजीव रहते हैं और हम और वे मज़े में साथ-साथ रहते हैं। मगर कुछ सूक्ष्मजीव ऐसे हैं जो शरीर में घुसकर बीमारियाँ पैदा करते हैं।

ऐसे सूक्ष्मजीव बैक्टीरिया, वायरस, फफूँद तथा अमीबा और मलेरिया पैदा करनेवाले प्लाज़्मोडियम जैसे अन्य परजीवी हो सकते हैं। सूक्ष्मजीवों से पैदा होनेवाली कुछ जानी-मानी बीमारियाँ हैं – मलेरिया, टीबी, निमोनिया, टायफाइड, हैज़ा, चिकनगुनिया, पीलिया, पोलियो वगैरह। इनके अलावा घाव का पकना जैसी तकलीफें भी सूक्ष्मजीवों की वजह से होती हैं।

जब कोई सूक्ष्मजीव हमारे शरीर में घुसता है तो कहते हैं कि संक्रमण हुआ है। शरीर संक्रमण के खिलाफ लड़ाई छेड़ देता है। आम तौर पर शरीर इस लड़ाई में जीत जाता है और सूक्ष्मजीव का सफाया कर देता है। कभी-कभी सूक्ष्मजीवों का पलड़ा भारी रहता है और शरीर में उनकी संख्या बहुत बढ़ जाती है और हम बीमार पड़ जाते हैं।

करीब 100 साल पहले तक हमें अपने शरीर की लड़ाई करने की क्षमता पर ही भरोसा करना पड़ता था। उस समय ऐसी बीमारियों से काफी बड़ी संख्या में लोग जान से हाथ धो बैठते थे। छोटी-मोटी चोट भी कई बार बहुत परेशान करती थी। चीरफाड़ करना भी मुश्किल होता था क्योंकि चीरफाड़ के बाद घाव के पकने की आशंका रहती थी।

फिर हमने ऐसी दवाइयाँ खोज निकालीं जो ऐसे सूक्ष्मजीवों को मारती हैं। इनमें पहली थी पेनिसिलीन जिसे वैसे तो 1928 में खोजा गया था मगर एक दवा के रूप में इसका उपयोग 1940 के बाद ही शुरू हुआ था। उसके बाद तो ऐसी कई दवाइयाँ खोजी जा चुकी हैं। इन दवाइयों को एंटीबायोटिक कहते हैं। एंटीबायोटिक दवाइयों की मदद से हम संक्रमण के खिलाफ बेहतर ढंग से लड़ सकते हैं। यानी शरीर तो अपना काम करता ही है, एंटीबायोटिक दवाइयों की मदद से वह यह काम और भी जल्दी और ज़्यादा प्रभावशाली ढंग से कर पाता है।

मतलब एंटीबायोटिक दवाइयाँ हमारे हाथ में आए अभी सिर्फ 75 साल ही हुए हैं। इन दवाइयों ने कितनी जानें बचाई हैं बताने की ज़रूरत नहीं है। मगर पिछले कुछ सालों से पता चलने लगा है कि अब सूक्ष्मजीव इन एंटीबायोटिक दवाइयों से मरते नहीं हैं। जैसे टायफाइड के लिए जो दवा बहुत भरोसेमन्द थी, अब वह काम नहीं करती। इसी प्रकार से टीबी की दवाइयाँ, मलेरिया की दवाइयाँ वगैरह भी उतनी कामयाब नहीं होतीं। यानी ये सूक्ष्मजीव इन दवाइयों के प्रतिरोधी हो गए हैं। तो क्या कारण है?

चित्रः इन्टरनेट

स्वास्थ्य विशेषज्ञों ने अध्ययन करके बताया है कि सूक्ष्मजीवों में प्रतिरोध पनपने का मुख्य कारण यह है कि हमने एंटीबायोटिक दवाइयों का बहुत ज़्यादा, गैर ज़रूरी उपयोग किया है। इसके अलावा इन दवाइयों का गलत ढंग से उपयोग भी प्रतिरोध पैदा होने का एक कारण बताया जाता है। वे कहते हैं कि एंटीबायोटिक दवाइयों का उपयोग उन्हीं बीमारियों के लिए करना चाहिए जो सूक्ष्मजीवों के कारण होती हैं। जैसे वे बताते हैं कि साधारण सर्दी-जुकाम या बुखार में इन दवाइयों का उपयोग नहीं करना चाहिए क्योंकि ये बीमारियाँ सूक्ष्मजीव के कारण हों, यह ज़रूरी नहीं है।

दूसरी बात वे कहते हैं कि जब किसी बीमारी के लिए एंटीबायोटिक दवा का उपयोग करें तो पूरा उपयोग करना चाहिए। जैसे टीबी के मामलों में एंटीबायोटिक बहुत कारगर थे। टीबी के मरीज़ को ये दवाइयाँ छह महीने से एक साल तक नियमित रूप से लेनी पड़ती हैं। मगर दवा शुरू करने के एकाध महीने के अन्दर मरीज़ के बीमारी के लक्षण गायब हो जाते हैं। तो उसे लगता है कि चलो ठीक हो गए, अब दवा लेने की क्या ज़रूरत? मरीज़ दवा बन्द कर देते हैं मगर सूक्ष्मजीव शरीर में बने रहते हैं।

तो यह समझना चाहिए कि ज़्यादा उपयोग और गलत उपयोग से प्रतिरोध क्यों पैदा हो जाता है। यहाँ जीवजगत की एक खूबी पर ध्यान देना चाहिए। जीवजगत में भरपूर विविधता पाई जाती है। तुमने ध्यान दिया होगा कि कोई भी दो इंसान हूबहू एक जैसे नहीं होते। उसी प्रकार से कोई भी दो सूक्ष्मजीव हूबहू एक जैसे नहीं होते। कई बार कई लाख में से एकाध ऐसा होता है जो किसी खास एंटीबायोटिक दवा से नहीं मरता। जब हम एक ही दवा का बार-बार उपयोग करेंगे और ज़रूरत न होने पर भी उपयोग करेंगे तो जो सूक्ष्मजीव उससे मरते हैं, वे तो मर जाएँगे। मगर विविधता के चलते कुछ सूक्ष्मजीव ऐसे होंगे जो उस दवा से नहीं मरते, वे बचे रहेंगे। फिर उनकी संतानों में यही गुण आ जाएगा। यदि दवा का उपयोग करते ही गए तो यही प्रतिरोधी सूक्ष्मजीव बचे रहेंगे जो उस दवा के प्रतिरोध हैं।

तो धीरे-धीरे एक स्थिति ऐसी आएगी कि सूक्ष्मजीवों की वह आबादी उस एंटीबायोटिक दवा से नहीं मरेगी। हो गया ना प्रतिरोध पैदा? इससे बचने का एक ही तरीका है कि सूक्ष्मजीवों पर इतना दबाव न डाला जाए कि प्रतिरोधी सूक्ष्मजीव ही आबादी में हावी हो जाएँ।

अब चूँकि प्रतिरोध की समस्या सामने आ ही गई है, तो विशेषज्ञ यह विचार कर रहे हैं कि आनेवाली दुनिया कैसी होगी। क्या हम 1940 के पूर्व की दुनिया में पहुँच जाएँगे जब छोटी-मोटी बीमारियाँ और घाव जानलेवा साबित हो सकते थे?

इस समस्या से निपटने का एक तरीका तो यह है कि हम नए-नए एंटीबायोटिक खोजते चले जाएँ। मगर वैज्ञानिक जानते हैं कि नए एंटीबायोटिक खोजना कोई आसान काम नहीं है। एंटीबायोटिक करते यह हैं कि सूक्ष्मजीव के जीवन की किसी क्रिया में अड़ंगा लगाते हैं। नया एंटीबायोटिक खोजने का मतलब है कि आप सूक्ष्मजीव के जीवन की कोई ऐसी नई क्रिया खोजें जिसमें टाँग अड़ाकर उसका जीना हराम कर सकें। ऐसी जीन क्रियाएँ खोजना आसान नहीं है।

ज़्यादा आसान तरीका यह है कि हम अपने पास मौजूद एंटीबायोटिक दवाइयों का संयम से उपयोग करें। डॉक्टरों को समझाएँ और आम लोगों को भी समझाएँ। लोगों को खास तौर से यह समझाना होगा कि अपनी मर्ज़ी से दुकान से खरीदकर एंटीबायोटिक दवा न लें। हमारे देश में डॉक्टर की सलाह के बिना ही दवाइयाँ खाने की प्रथा प्रचलित है। इस प्रथा ने भी समस्या को जटिल बनाने में मदद की है। संक्षेप में इतना ही कह सकते हैं कि एंटीबायोटिक हमारे लिए बहुत ज़रूरी हैं और इन्हें बरबाद करने का जोखिम हम मोल नहीं ले सकते।

चूरनवाले चाचा

चाचा चूरनवाला आया
खट्ठे-मिट्ठे चूरन लाया
बोलो मेरे चूरनवाला
इसको खाते छोटू लाला
खूब मज़े से डटकर खाएँ
ऊँचे अफसर हम बन जाएँ

–निशा, छटी, उज्जैन, म. प्र.

बादल

बादल आए, बादल आए
तेज़ हवा के झोंके लाए
बादल गरज़े, पानी बरसे
जिसे देख मेरा मन तरसे

कभी सोचती हूँ
अगर मैं बादल बन जाऊँ
ऊँचे नीले आसमान में
मस्त होकर मँडराऊँ

–हितेच्छा साहनी, चौथी,
आई टी एल पब्लिक स्कूल, दिल्ली

लड़का तालाब में डूबा

बलियारा में बहुत सारे बच्चे नहाने के लिए गए थे। तो एक लड़का अपने दोस्त को पटको-पटको करके बोल रहा था तो उसके दोस्त ने उसे सही में पटक दिया तो वो पानी में भीग गया। उसके मम्मी-पापा उसे बहुत ढूँढ रहे थे। फिर भी वो लड़का नहीं मिल रहा था तो एक लड़का बोला, "वो तो तालाब में नहाने के लिए गया है।" उसके मम्मी-पापा तालाब गए तो लड़का डूब गया था। उसको तालाब से निकाले और उसे अस्पताल ले गए तो डॉक्टर बोले कि यह तो मर गया है।

–पूर्णिमा यादव, तीसरी, अजीमप्रेमजी स्कूल धमतरी, छत्तीसगढ़

–अंशुल ब्रम्हनकर, दूसरी,
आनन्द निकेतन स्कूल
सेवाग्राम, वर्धा, महाराष्ट्र

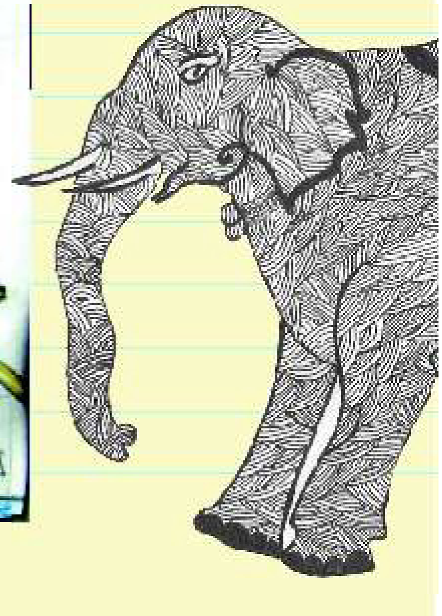

झूमकर आई बरखा रानी

बरखा रानी बरखा रानी
छम-छम लेकर आई पानी
खुशियों से खिल उठा किसान
ज्वार बाजरा बोए धान
हुआ मोर देखा मतवाला
काँप उठा है कौआ काला
चुप हो बैठी कोयल रानी
गाए चातक डाली-डाली
झूम कर आई बरखा रानी

—अंजली, छठी, स्वामी विवेकानन्द विद्यालय, लोधर, कानपुर, उ. प्र.

—आराध्या कपूर, चौथी, डीपीएस लुधियाना, पंजाब

नन्हा नन्दू हाथी

दिन भर शैतानी करता
नन्हा नन्दू हाथी
रोज़ डाँटतीं उसकी अम्मा
बार-बार समझातीं
जंगल में दिन भर भटकता
कर-कर रोज़ बहाने
चुपके-चुपके कभी वह नटखट
जाता नदी नहाने
वीर बड़ा है लेकिन नन्दू
शेर से लड़े अकेला
इसलिए तो सबका प्यारा
नन्हा नन्दू अलबेला

—उज़्मा हबीब, छटी, के के अकेडमी, लखनऊ, उ. प्र.

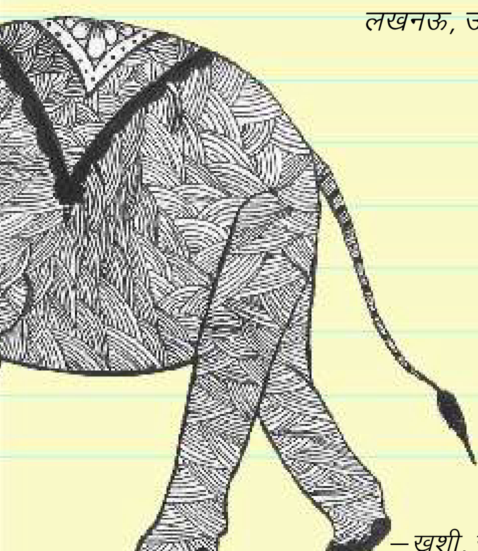

—खुशी, सवाई माधोपुर, आठवीं, राजस्थान

एक सच्ची घटना

29-04-14 की यह घटना है। सुबह का समय था। पहला पीरियड चल रहा था। हमारे गुरूजी हिन्दी पढ़ा रहे थे। उनका नाम श्री आर. बी. मिश्रा है। स्वच्छ वातावरण छाया हुआ था। पंखा चल रहा था। बच्चे पढ़ने में मगन थे कि अचानक खट की आवाज़ आई। तभी बच्चों ने देखा कि एक चिड़िया पंखे से टकराकर आ गिरी। गुरूजी ने बच्चों से कहा कि उसे पानी पिला दो। तब एक बच्चे ने उसे उठाकर पानी पिलाया। गुरूजी ने बच्चों से कहा कि उसे कोने में कुर्सी पर बिठा दो और एक बच्चे से कहा कि इसकी देखभाल करे। तभी एक बच्चे ने दुबारा पानी पिलाने के लिए कहा। तब गुरूजी ने कहा पानी पिला दो। तभी बच्चे ने उसे पानी पिला दिया और कुछ ही देर में चिड़िया फुदकने लगी। घण्टी बजते ही चिड़िया उड़ गई और जाकर बगीचे में बैठ गई।

—यासीर खान, पाँचवीं, रूदौली, फैज़ाबाद, उ. प्र.

मेरा पन्ना

छत खुलवाया और पानी गिरा

मेरा बड़ा भाई दीपक, पिता, बुआ रामपुर बाई, बूढ़ी दादी और छोटा भाई शैली औबेदुल्लागंज में रहते हैं। मेरी छोटी बहन मालती और मैं भोपाल में अरण्यवास में रहते हैं। ये हमारी जात के बच्चों के लिए एक होस्टल जैसा है। हम बीच-बीच में थोड़े-थोड़े दिन के लिए घर जाते हैं। घर में हम बहुत मज़ा करते हैं। दादी असली-असली खाना बनाती है। मुझे अन्तड़ी तो बहुत ही ज़्यादा पसन्द है। बा (पिता) जब माँगकर घर लौटता है तो कभी-कभी अन्तड़ी लेकर आता है। दादी उसे तलती है और हम रोटी के साथ खाते हैं।

हमारी टपरी कच्ची है, छत पर बाँस और फूस है। पिछले साल तो हद हो गया। बा ने सोचा पानी गिरने के पहले थोड़ी मरम्मत कर लेते हैं। उसने छत खुलवा लिया। बा ने थोड़े ईंटें खरीदे थे, सोचा एक-आध दीवार ईंट का उठा लेंगे। वो देख नहीं पाता है इसलिए कम ही कमाता है। घर पूरा खुला था और बरसात शुरू हो गई। सारा घर किचल-किचल भरा गया। पानी रुकता ही नहीं था कि कुछ किया जा सके। हम सब दो-चार रोज़ ताकोस काका के घर सोए। फिर जात के कुछ लोगों ने मदद की और छत पे बाँस बाँधकर पाल (तिरपाल) डाल दी। हम घर पर सोने लगे। पानी तो नहीं आता, पर ज़मीन भी नहीं सूखती। पूरा घर बसाता रहता। शैली और मालती ऐसे ही कमज़ोर हैं, रोज़-रोज़ बीमार रहते। ज़मीन इतनी गीली थी कि चुलहा भी मुश्किल से जलता। गोदड़े जो गीले हो गए थे सूखते ही नहीं। बसाते रहते थे। लेकिन मेरे बा सबसे अच्छे हैं। अन्धे हैं, माँगकर घर चलाते हैं। पर उन्होंने धीरे-धीरे जैसे बना सब कुछ जमा लिया। धीरे-धीरे उलट-पलट के गोदड़े सुखाना शुरू किया। थोड़ा रेता डालकर पकाने के लिए सूखा कोना बनाया। न कभी डाँटा, न चिल्लाया।

हम दोनों को होस्टल छोड़ आया। दीदी ने शैली को भी रख लिया। वो बहुत छोटा है, बहुत कमज़ोर भी। दिनभर सिर्फ खाता और सोता। मैं बड़ी हुई तो बा के लिए पक्का घर बनाऊँगी।

–संझली, नीलम, प्रद्यामणी और विद्याभारती, अरण्यवास भोपाल, म. प्र.

–उर्मिला, तीसरी, ई. जी. एस भीमपुरा, म. प्र.

–भौमी, पाँचवीं, फलोदी, राजस्थान

नाम में क्या रक्खा है...

इन्द्राणी रॉय

अमरीका के इलिनॉय विश्वविद्यालय में हाल ही में एक अनोखा शोध किया गया। शोध तूफानों के नामों पर था।

तुमने समाचारों में भारत के आइला, नर्गिस, लैला जैसे चक्रवातों और अमरीका के कैटरीना तूफान के बारे में सुना ही होगा। तूफानों के नाम इसलिए दिए जाते हैं ताकि सन्देश भेजने में आसानी हो। ...तूफान दक्षिण-पूर्व से आ रहा है, इतनी रफ्तार से, इतने विस्तार का तूफान... यह बोलने से ज़्यादा आसान यह बोलना है कि आइला अगले कुछ दिनों में यहाँ पहुँच जाएगा।

हाँ, तो हम बात कर रहे थे तूफानों के नामों पर किए गए शोध की। देखा गया है कि जिन तूफानों को महिलाओं के नाम दिए जाते हैं वे पुरुषों के नामवाले तूफानों से कहीं ज़्यादा विनाशकारी साबित होते हैं। अचरज की बात है न?

तूफानों को क्या नाम दिए जाएँगे इसकी लिस्ट पहले से ही तैयार हो जाती है। जब-जब चक्रवाती स्थितियाँ बनती हैं, इस लिस्ट में से एक के बाद एक नाम का इस्तेमाल होने लगता है। फिर यह कैसे होता है कि क्रिस्टिना तूफान क्रिस्टोफर तूफान से ज़्यादा भयानक निकले?

शोधकर्ताओं ने लोगों को कई नाम दिए जैसे एलेक्ज़ेंडर और एलेक्ज़ैंड्रा, विक्टर और विक्टोरिया। और फिर उनसे पूछा कि कौन-से तूफान ज़्यादा भयानक होंगे। लोगों ने बार-बार पुल्लिंग नामवाले तूफानों को ज़्यादा भयानक बताया।

दरअसल लोगों की सोच में महिलाएँ नर्म और कमज़ोर होती हैं और पुरुष बलवान और शक्तिशाली। और इसी सोच के आधार पर वे तूफानों के बारे में विचार करते हैं। नतीजा यह होता है कि जब विक्टर नामक तूफान के बारे में लोगों को चेतावनी दी जाती है तो वे उसे ज़्यादा गम्भीरता से लेते हैं और अपने बचाव की तैयारी करते हैं। इसके विपरीत विक्टोरिया के आने की चेतावनी को लोग हलका-फुलका तूफान मानकर अपने बचाव की उतनी तैयारी नहीं करते हैं। इसलिए ये तूफान इतने ज़्यादा विनाशकारी साबित होते हैं।

सदियों से औरतों को आदमियों से हीन माना जाता रहा है। और इसकी ही छवि हमें हमारी भाषाओं में दिखती है।

समाज में महिलाओं और पुरुषों के बारे में प्रचलित धारणाएँ किस तरह से भाषा पर प्रभाव डालती हैं इस शोध से हम देख सकते हैं। वैसे भाषा में असमानता देखने के लिए हमें अमरीका तक नहीं जाना पड़ता है। अपनी भाषाओं को टटोलकर देखें तो ऐसे कितने ही उदाहरण मिल जाएँगे।

(शेष भाग पेज 33 पर)

चित्रः दिलीप चिंचालकर

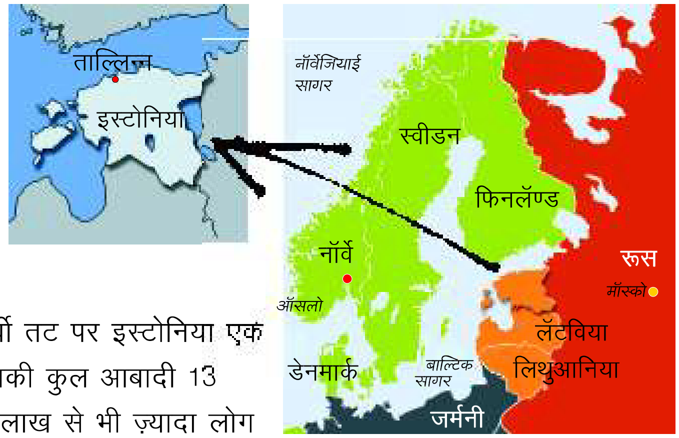

लँगड़ा शहर तालिन्न

रुस्तम सिंह

बाल्टिक सागर के पूर्वी तट पर इस्टोनिया एक छोटा-सा देश है जिसकी कुल आबादी 13 लाख है। इनमें से 4 लाख से भी ज़्यादा लोग उसकी राजधानी तालिन्न में रहते हैं। आबादी का 29 प्रतिशत हिस्सा रूसी मूल के लोग हैं। इनमें से ज़्यादातर 1944 के बाद यहाँ आकर बसे थे जब इस्टोनिया सोवियत संघ का हिस्सा था। शेष लोग इस्टोनिया के मूल निवासी हैं जो सदियों से यहाँ रह रहे हैं।

अपने इतिहास के दौरान इस्टोनिया का इलाका अधिकतर समय दूसरे देशों के कब्ज़े में रहा। इन देशों में डेनमार्क, स्वीडन, जर्मनी तथा रूस प्रमुख हैं। 1918 में इस्टोनिया पहली बार एक स्वतंत्र देश के रूप में स्थापित हुआ, जब वहाँ के मूल निवासियों ने उसे गणतंत्र घोषित कर दिया। यह गणतंत्र 1940 तक बना रहा जब पहले सोवियत संघ और बाद में जर्मनी ने उस पर कब्ज़ा कर लिया। 1944 में इस्टोनिया को एक बार फिर सोवियत संघ ने हथिया लिया। यह स्थिति 1991 तक बनी रही जब सोवियत संघ के टूटने के बाद इस्टोनिया ने दुबारा अपने-आप को स्वतंत्र घोषित किया।

इस्टोनिया में अपने संक्षिप्त आवास के दौरान मुझे कवियों, लेखकों तथा अन्य लोगों से बातचीत करते हुए महसूस हुआ कि यहाँ मूल इस्टोनी तथा रूसी लोगों के बीच एक दुराव है, जिसे आम तौर पर व्यक्त नहीं किया जाता लेकिन वह कभी-कभार प्रकट हो जाता है। मेरा ख्याल है कि इस्टोनी मूल के ज़्यादातर लोग वहाँ रहनेवाले रूसियों को विदेशी मानते हैं, चाहे वे प्रायः ऐसा कहते नहीं।

टूम्पीया पहाड़ी से पुराने तालिन्न का एक दृश्य

जब हम ताल्लिन्न में उतरे तो दिन के लगभग दो बजे थे। ताल्लिन्न इस्टोनिया देश का सबसे बड़ा शहर है और उसकी राजधानी भी। अढ़ाई घण्टे पहले जब हम नॉर्वे के शहर ऑसलो से चले थे तो वहाँ खूब ठण्डक थी। परन्तु यहाँ हवाई अड्डे से बाहर निकलते ही हमें भयंकर गर्मी महसूस हुई। और हमें अपने सारे गर्म कपड़े उतारने पड़े। हमें लेने आईं हमारी कवि-मित्र ने बताया कि इस वक्त शहर का तापमान 33 डिग्री सेंटीग्रेड है। "केवल दो दिन पहले इसी वक्त मैं यहाँ हवाई अड्डे पर थी," उन्होंने कहा, "और तब तापमान सिर्फ 2 डिग्री था। यानी भयंकर ठण्ड। इसीलिए मैं अपने गर्म कपड़े साथ लेकर आई हूँ।" उन्होंने हाथ में पकड़े अपने बैग की ओर इशारा किया। "मौसम कभी भी अचानक बदल सकता है।"

हम तीनों को टैक्सी से शहर के मध्य में जाना था। यहाँ टैक्सीवाले कुछ भी पैसा माँग लेते हैं, हमारी मित्र ने बताया, इसलिए आपको चौकस रहना पड़ता है। उन्होंने कुछ टैक्सीवालों से बातचीत की। वे सब 9 से 12 यूरो माँग रहे थे। तब उन्होंने मोबाइल से एक टैक्सी को बुलाया जिसने 7 यूरो में हमें हमारे गन्तव्य-स्थान पहुँचा दिया।

मौसम कभी भी अचानक बदल सकता है।

हम लोहे की सींखचोंवाले एक बड़े-से गेट के सामने उतरे जो ताले से बन्द था। हमारी मित्र ने ताला खोला, हमें अन्दर किया और वापिस ताला लगा दिया। एक बड़ा-सा अहाता पार करने के बाद हम एक चार-मंज़िला इमारत के सामने पहुँचे। हर मंज़िल पर कई फ्लैट थे। थोड़ा और आगे कुछ दफ्तर भी थे। हमें बताया गया कि इस जगह का नाम "राइटर्स हाउस" यानी "लेखकों का आवास स्थान" है जहाँ लेखक रहते हैं। इसी इमारत में दूसरी मंज़िल पर एक खाली फ्लैट में हमें ठहराया गया। सीढ़ियों के दरवाज़े का ताला खोलकर हम तीनों ऊपर आए। जिस फ्लैट में हमें रहना था उस पर भी ताले लगे थे। हमें वहाँ छोड़कर जाने से पहले हमारी मित्र ने बताया कि पहले यह इमारत खुली रहती थी और यहाँ खूब चोरियाँ होती थीं। इसलिए अब हर जगह ताले लगा दिए गए हैं जो दिन में भी बन्द रहते हैं। चाबियों का एक गुच्छा हमें देते हुए उन्होंने हिदायत दी कि हम दिन में भी कोई दरवाज़ा खुला नहीं छोड़ें।

●●●

ताल्लिन्न में हमारी मित्र ने हमें अपने साथ तिब्बती आयुर्वेद की कुछ दवाइयाँ लाने को कहा था। ये दवाइयाँ एक महिला के लिए थीं जिन्हें कैंसर की बीमारी है। ये महिला पहले भी इन्हें लेती रही हैं और ऐसा मानती हैं कि उन्हें इनसे फायदा होता है।

सभी चित्रः इन्टरनेट

हमारे फ्लैट छोड़ने के बाद हमारी मित्र ने हमें फोन पर बताया कि उन महिला के पति शाम को पाँच बजे पास के कोने वाले पेगासस नाम के रेस्तराँ में हमसे मिलेंगे। पाँच बजने के थोड़ी देर बाद जब हम वहाँ पहुँचे तो वे सज्जन हमारा इन्तज़ार कर रहे थे। वे सूट और टाई पहने थे। उनकी उम्र लगभग साठ वर्ष रही होगी। उनका चेहरा अत्यन्त संवेदनशील था और ज़रा व्यथित लग रहा था। मिलते ही उन्होंने उठकर हमारा स्वागत किया और हमें एक नीला गुलाब भेंट किया। उन्होंने बताया कि उनका नाम काले कास्पर है और वे रूसी भाषा में उपन्यास लिखते हैं। उन्होंने अपनी पत्नी का नाम भी बताया। उनका नाम गोहार है, जो हमें परिचित-सा लगा। उन्होंने दवाइयाँ लाने के लिए हमें धन्यवाद दिया और अपनी पत्नी की ओर से आभार प्रकट किया। हमने भी उनकी पत्नी के लिए शुभकामनाएँ भेजीं। फिर उन्होंने हमें ताल्लिन्न के पुराने हिस्से में घुमाने की पेशकश की जो हमने स्वीकार कर ली।

घर जाकर हमने श्री कास्पर द्वारा दिए नीले गुलाब को पानी में रखा तो पानी नीला हो गया। बाद में हमारी मित्र ने हमें बताया कि नीला गुलाब सफेद गुलाब को नीली स्याही से रंगकर बनाया जाता है।

●●●

ताल्लिन्न शहर के पुराने हिस्से को वहाँ के लोग "पुराना नगर" या "पुराना ताल्लिन्न" कहते हैं। और यह नगर लगभग वहीं से शुरू होता है जहाँ पर हम बैठे थे। इसमें कोई शक नहीं कि पुराना नगर ताल्लिन्न शहर का सबसे सुन्दर इलाका है। ताल्लिन्न की नगरपालिका और वहाँ के निवासियों ने इसे लगभग वैसा ही बनाए रखने की कोशिश की है जैसा यह पुराने ज़माने में कभी रहा होगा। और इसमें संयुक्त राष्ट्र का भी योगदान है, क्योंकि यह पुराना ताल्लिन्न अब संयुक्त राष्ट्र की "विरासत स्थली" है।

पुराने ताल्लिन्न की गलियाँ पत्थरों से बनी हुई हैं और उसके दोनों ओर रेस्तराँ व दुकानें हैं, या घर और दफ्तर हैं। आम तौर पर गलियाँ काफी तंग हैं। कई जगह उनमें कारें जा सकती हैं, पर हर जगह नहीं। दुकानों, घरों व दफ्तरों की इमारतों को भी वैसे ही बनाए रखने की कोशिश साफ नज़र आती है जैसी वे पहले रही होंगी। हालाँकि उनके अन्दर लगभग सारा साजो-सामान बिलकुल आधुनिक है। परन्तु कुछ दुकानें ऐसी भी हैं जो केवल पारम्परिक सामान ही बेचती हैं, पारम्परिक वेशभूषाएँ, कलाकृतियाँ, ऊनी कपड़े व टोपियाँ तथा सजावट की चीज़ें इत्यादि।

"रीवाल" या "रीह-फाल" अर्थात "हिरण का गिरना"

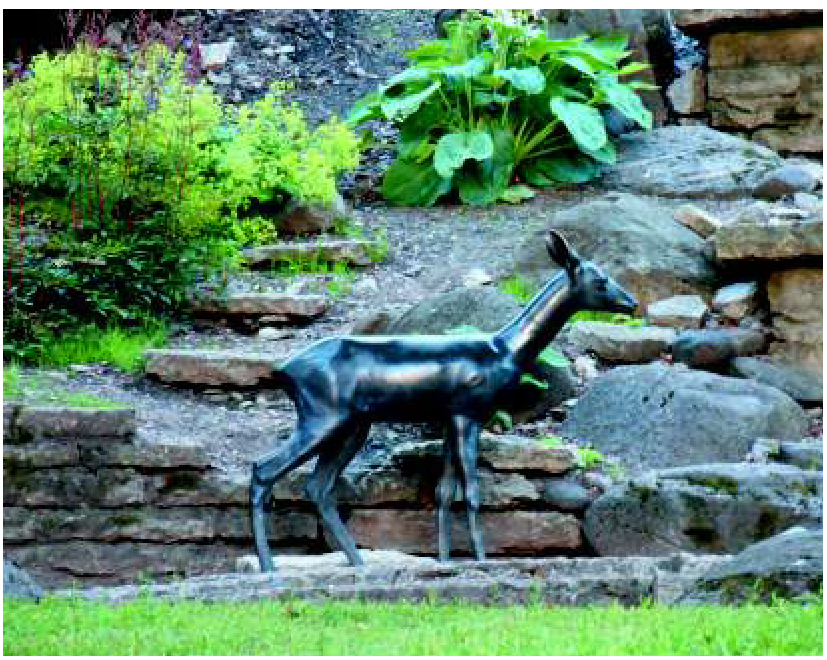

पुराना ताल्लिन्न एक पहाड़ी के ऊपर, उसकी ढलानों पर तथा उसके साथ-साथ नीचे बसा हुआ है। इस पहाड़ी का नाम टूम्पीया पहाड़ी है। यह पहाड़ी कैसे बनी, इसके बारे में एक कहानी है। कहते हैं कि इस्टोनिया का प्राचीन राजा कालेव, जिसे सब लोग बहुत प्यार करते थे, की मृत्यु हुई तो उसकी पत्नी लिण्डा ने उसकी कब्र पर बहुत-सी बड़ी-बड़ी चट्टानों को इकट्ठा कर उसकी याद में टीले के रूप में एक स्मारक खड़ा कर दिया। वह टीला यही पहाड़ी है जिसका नाम टूम्पीया पड़ गया।

नीचे की गलियों में घुमाते हुए काले कास्पर हमें लेकर एक चौड़ी-सी गली में ऊपर की ओर बढ़ने लगे। उन्होंने बताया कि पुराने ताल्लिन्न को "लँगड़ा नगर" कहा जाता है। इस नामकरण के पीछे वे दो मुख्य गलियाँ हैं जो पहाड़ी के ऊपर जाती हैं या वहाँ से नीचे उतरती हैं। इनमें से एक गली "लम्बी टाँग" तथा दूसरी को "छोटी टाँग" कहते हैं। "लम्बी टाँग" ज़्यादा चौड़ी और लम्बी गली है जबकि "छोटी टाँग" सँकरी और छोटी गली है। और लगभग पूरी ही सीढ़ियों की बनी हुई है। उस वक्त हम "लम्बी टाँग" से ही ऊपर जा रहे थे।

हम थोड़ा ही ऊपर गए होंगे जब श्री कास्पर रुके और उन्होंने दाहिनी ओर इशारा किया। वहाँ गली के किनारे एक छोटे-से पार्क में एक हिरण की प्रतिमा थी। इस हिरण के बारे में भी एक कथा प्रचलित है जो श्री कास्पर ने हमें सुनाई। तेरहवीं सदी में डेनमार्क के राजा वालडीमार ने उत्तरी इस्टोनिया को जीत लिया तथा साथ में ताल्लिन्न को भी। ताल्लिन्न की आबादी उस वक्त लगभग पाँच हज़ार थी हालाँकि यह तब भी एक प्रसिद्ध बन्दरगाह था। राजा वालडीमार शिकार का शौकीन था। एक बार नगर के पास अपने मंत्रियों के साथ वह शिकार पर निकला हुआ था जब उसने एक बहुत ही सुन्दर हिरण को देखा। और उसने हुक्म दिया कि उसे ज़िन्दा ही पकड़ लिया जाए। हिरण शिकारियों तथा शिकारी कुत्तों से बचने के लिए चूने की एक ऊँची चट्टान पर चढ़ गया। और घबराहट में उससे नीचे कूदकर मर गया। बाद में उस हिरण की याद में उसकी एक प्रतिमा उस जगह पर स्थापित कर दी गई जहाँ पर वह गिरा था। उसे बनानेवाले कलाकार का नाम था जान

कूर्ट। इस प्रतिमा को कई बार चुराने या नुकसान पहुँचाने की कोशिश की गई। पर ताल्लिन्न के लोगों को यह इतनी पसन्द है कि इसे हर बार मरम्मत कर वापिस स्थापित कर दिया गया। कहा जाता है कि ताल्लिन्न का पुराना नाम "रीवाल", जो इसे जीतनेवाले जर्मन राजाओं ने दिया था, "रीह-फाल" शब्दों में से निकलता है जिनका अर्थ है "हिरण का गिरना"। परन्तु इस मान्यता को लेकर लोग एकमत नहीं हैं।

यह सब हमें बताने के बाद श्री कास्पर एक बार फिर पुराने ताल्लिन्न की "लम्बी टाँग" पर ऊपर की ओर बढ़ने लगे। अब शाम के छह बज चुके थे। आकाश में कहीं-कहीं बादल घिर आए थे। जहाँ दोपहर बाद भयंकर गर्मी लग रही थी, वहीं अब एक खूब मोटे स्वैटर तथा गर्म मफलर में भी मुझे ठण्ड लग रही थी। हमारे दोनों ओर बहुत कम लोग गली में आ-जा रहे थे। हम धीमे-धीमे चल रहे थे क्योंकि हमारे आगे चढ़ाई थी, टूम्पीया पहाड़ी की। पर अब हम "लम्बी टाँग" को छोड़ चुके थे और किसी दूसरी ही गली में थे।

अचानक श्री कास्पर मुड़े और कुछ सीढ़ियाँ चढ़ते हुए एक खुली जगह में पहुँच गए। इस जगह के दो तरफ पत्थर की काफी मोटी, पर छोटी-सी मुण्डेर थी। एक तरफ, मुण्डेर से पीछे हटकर और ज़रा नीचे, दो दुकानें थीं। हम सामने की मुण्डेर के पास जा खड़े हुए। वहाँ पहले भी कुछ लोग खड़े थे। उनके हाथों में कैमरे थे और वे तस्वीरें खींच रहे थे। किस चीज़ की तस्वीरें? मुण्डेर से आगे, हमारी नज़रों के सामने और नीचे, पुराना ताल्लिन्न फैला हुआ था। जो चीज़ सबसे सुन्दर लग रही थी वह थी घरों की छतें। यह एक अनूठा दृश्य था जिसका वर्णन करना मेरे लिए असम्भव है। किसी भी शहर का उसके ऊपर की तरफ से ऐसा सुन्दर दृश्य मैंने पहले कभी नहीं देखा था। इससे भी अनूठी बात यह थी कि पीली चोंच तथा सफेद पंखोंवाला एक सी-गल (समुद्री जल-पक्षी) मुण्डेर पर हम सब की ओर मुँह करके बैठा था और इतने लोगों तथा उनकी बातचीत के शोर के बावजूद उड़ नहीं रहा था। वह लोगों को लगभग छू रहा था, उनके कैमरों की ओर देख रहा था। वे भी उसकी तस्वीरें खींच रहे थे और हँस रहे थे, पर कोई उसे तंग नहीं कर रहा था।

लम्बी टाँग

किले की दीवार

किले की दीवार के गुम्बद

पुराना ताल्लिन्न अब संयुक्त राष्ट्र की "विरासत स्थली" है।

जिस जगह पर हम खड़े थे उसका नाम था कोहटू गली प्लेटफॉर्म। यह उन पाँच प्लेटफॉर्मों में से एक है जहाँ से ताल्लिन्न का विहंगम दृश्य मिलता है।

यहाँ पर मैं तुमको याद दिला दूँ कि इस वक्त हम टूम्पीया पहाड़ी के बिलकुल ऊपर थे, जिससे जुड़े हुए बहुत-से किस्से-कहानियाँ ताल्लिन्न में सुनाए जाते हैं। राजा कालेव की पत्नी लिण्डा तथा हिरण के किस्से तुम सुन ही चुके हो।

एक किस्सा यह भी है कि पन्द्रहवीं सदी में पीरीटा के प्रसिद्ध भिक्षुणी-विहार से एक सुन्दर युवा भिक्षुणी एक घुड़सवार योद्धा के साथ भाग खड़ी हुई। मठाध्यक्षा ने शीघ्र ही उसके पिता को खबर भेजी जो किले के पास टूम्पीया पहाड़ी पर ही रहता था। क्रोध में उफनते हुए पिता ने कुछ आदमी साथ लिए और भगौड़ों का पीछा किया, जो जल्द ही पकड़े गए। योद्धा का काम तो उन्होंने वहीं तमाम कर दिया। पर क्रोधी पिता बेटी को घर ले आया और खुद अपने हाथों से उसे दीवार में चिन दिया। बताते हैं कि दीवार के भीतर वह खाली जगह अब भी वहीं है और आप चाहें तो उसे देख सकते हैं। और वह लड़की? उसकी युवा आत्मा टूम्पीया पहाड़ी की गलियों में घूमती रहती है।

एक और कहानी यूँ है। एक युवा लड़का और लड़की ताल्लिन्न नगर की दीवार के बाहर अलग-अलग जगहों पर रहते थे। वे चोरी-छिपे मिलने लगे। लड़के का नाम हर्मन था और वह बहुत लम्बा और पतला था। लड़की का नाम मार्गरीता था और वह कद में छोटी व काफी मोटी थी। शाम को व रात को वे हाथों में हाथ डाले टूम्पीया पहाड़ी के भिन्न-भिन्न कोनों व बगीचों में घूमते थे। पर उन्हें मध्य-रात्रि से ठीक पहले नगर के फाटकों से बाहर निकलना होता था, नहीं तो उन्हें नगर के बुज़ुर्गों का श्राप लग सकता था। एक रात वे चुम्बनों में इतना लीन थे कि उन्हें पता ही नहीं चला कि कब मध्य-रात्रि का घण्टा बजने लगा। मार्गरीता पिक्क गली से उतरते हुए बाहर की ओर भागी। हर्मन रूतू गली में से फाटक की ओर दौड़ा। परन्तु उन्हें देर हो चुकी थी और वे दोनों पत्थरों में बदल गए। आज उन्हें “लम्बा हर्मन” और “मोटी मार्गरीता” के नामों से जाना जाता है।

●●●

हम फिर चलने लगे। थोड़ी देर बाद हम अलेग्ज़ेंडर नीवीस्की गिरजाघर के सामने से निकल रहे थे। यह गिरजाघर टूम्पीया पहाड़ी पर सबसे ऊँची इमारत है और अपने वास्तुशिल्प में बाकी सब इमारतों से अलग नज़र आता है। इसका कारण यह है कि यह गिरजाघर उस वक्त बनाया गया जब इस्टोनिया रूस के कब्ज़े में था (1700-1918) और अलेग्ज़ेंडर तृतीय वहाँ का ज़ार (राजा) था। इस तरह यह गिरजाघर रूसी पारम्परिक चर्च से सम्बन्ध रखता है और ताल्लिन्न में

ताल्लिन्न का विहंगम दृश्य

रहनेवाले रूसी मूल के बहुत-से लोग यहाँ प्रार्थना करने आते हैं।

क्योंकि बात रूस तथा रूसी मूल के लोगों की चल रही है, इसलिए यहाँ यह बताना उचित होगा कि पुराने ताल्लिन्न का कुछ सम्बन्ध रूस के महान कवि और कथाकार अलेग्ज़ेंडर पुश्किन से भी रहा है। पुश्किन के परनाना अफ्रीका में ईथियोपिया के एक राजकुमार के बेटे थे तथा केमरून में पैदा हुए थे। बाद में जब वे रूस में बस गए तो रूस के प्रसिद्ध ज़ार पीटर महान ने उन्हें रूसी सेना में जरनैल नियुक्त किया। उनका नाम था एडम पीटरोविच हैनीबल। कवि पुश्किन के ये परनाना 1742 से 1752 तक ताल्लिन्न के किले के कमाण्डर थे। मेरे लिए यह जानना सुखद आश्चर्य था क्योंकि पुश्किन मेरे सबसे प्रिय लेखकों में से हैं और मैं अब भी उनकी कविताएँ और कहानियाँ चाव से पढ़ता हूँ।

अलेग्ज़ेंडर नीवीस्की गिरजाघर ले जानेवाली गली आगे जाकर एक बड़े-से वर्गाकार स्थान में जा निकलती है, जिसमें और भी कई गलियाँ आकर मिलती हैं। जहाँ पर यह गली खत्म होती है उसके बिलकुल सामने, वर्गाकार स्थान के एक तरफ, एक सुन्दर इमारत को हमने देखा जिस पर इस्टोनिया का राष्ट्रीय झण्डा फहरा रहा था। श्री कास्पर ने हमें बताया कि यह इमारत इस्टोनिया का संसद भवन है। यह इमारत पुराने ताल्लिन्न के किले का हिस्सा है जो इसके पीछे तथा दाहिनी तरफ फैला हुआ है। हम इस इमारत के अहाते में घूमने लगे और लगभग उसके दरवाज़े तक पहुँच गए। अहाते में कुछ कारें खड़ी थीं और इक्का-दुक्का लोग भी वहाँ आ-जा रहे थे। मैं यह देखकर हैरान हुआ कि एक भी पुलिसवाला या कोई और सुरक्षाकर्मी वहाँ नहीं था, न पुलिस की कोई गाड़ी ही थी। और न ही किसी ने इस महत्वपूर्ण सरकारी इमारत के अहाते में घूमने से हमें रोका। यह किसी भी भारतीय के लिए आश्चर्य का विषय हो सकता है, क्योंकि हमारे यहाँ हर महत्वपूर्ण सरकारी इमारत पुलिस के नाकों से घिरी रहती है और एक आम नागरिक के लिए उस तक जाना एक कठिन व जोखिम-भरा काम साबित हो सकता है।

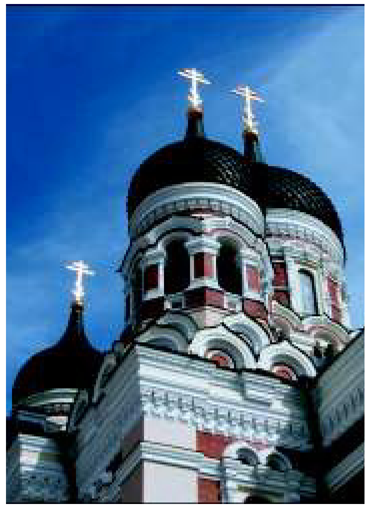

अलेग्ज़ेंडर नीवीस्की गिरजाघर वाली गली जहाँ खत्म होती है उसके बिलकुल सामने इस्टोनिया का संसद भवन है

यह लिखते हुए मुझे ध्यान आया कि न केवल पुराने ताल्लिन्न में, बल्कि नए ताल्लिन्न की सड़कों पर भी मुझे लाल-बत्तीवाली एक भी ऐसी सरकारी गाड़ी नहीं दिखी जो रास्ता खाली करवाने के लिए हॉर्न पर हॉर्न बजा रही हो, जैसा कि हमारे यहाँ होता है। जहाँ तक पुलिस का सवाल है, पुराने ताल्लिन्न में तो मुझे कोई पुलिसकर्मी नज़र ही नहीं आया। हाँ, नए ताल्लिन्न में कहीं-कहीं पुलिस की गाड़ी खड़ी हुई या आती-जाती दिखती थी। परन्तु पूरे ताल्लिन्न में मुझे दो से ज़्यादा पुलिसकर्मी किसी एक स्थान पर इकट्ठे खड़े हुए नहीं दिखे।

संसद भवन से दाहिनी ओर मुड़कर हम फिर एक गली में घुस गए। इस गली में हमारे बाईं ओर कुछ मंत्रालयों के दफ्तर और आगे चलकर कुछ विदेशी दूतावास थे। यदि हम इन इमारतों के अन्दर जा सकते तो हम किले की बाहरी दीवार तक पहुँच जाते जो इनके पीछे थी। और यदि हम यहाँ से बाएँ मुड़कर पहाड़ी से नीचे उतर सकते तो हम किले की पिछली दीवार को बाहर से देख सकते थे। और असल में अगले दिन हमने ऐसा किया भी। हम अपनी कवि-मित्र के साथ उस बड़े-से

गिरजे के शिल्पकार उलाव के मुँह से एक साँप तथा एक मेंढक बाहर निकले और तीनों पत्थर में बदल गए।

बगीचे में गए जो किले की बाहरी दीवार से नीचे पहाड़ी के साथ-साथ फैला हुआ है। इस बगीचे में बैठकर हमने किले की दीवार और उसमें बनी खिड़कियों को देखा। हम एक मोटे-से पेड़ के ठूँठ पर बैठे थे। हमारी मित्र गाडकोमोला नाम का एक पिसा हुआ मेक्सीकन सलाद बनाकर लाई थीं। जिसे हम चिप्स के साथ खा रहे थे। थोड़ी देर बाद हमारी मित्र की इक्कीस साला बेटी भी आ पहुँची। वह भी कविताएँ लिखती है। उसके साथ प्रैम में लेटी हुई उसकी नन्हीं-सी बेटी भी थी।

उधर गली में चलते हुए श्री कास्पर हमें एक और ऐसे प्लेटफॉर्म पर ले गए जहाँ से पुराने तथा नए ताल्लिन्न के कुछ भाग का भी विहंगम दृश्य दिखाई देता है। इस प्लेटफॉर्म का नाम है पटकूली प्लेटफॉर्म। यहाँ से पुराने नगर की दीवार में बने गुम्बदों के अलावा सेंट उलाव चर्च की ऊँची मीनार भी नज़र आती है। पन्द्रहवीं सदी में बने इस चर्च की मीनार उस ज़माने में दुनिया की सबसे ऊँची मीनार थी।

इस चर्च के बारे में भी एक किंवदन्ती है। इस्टोनिया के लोग दुनिया का सबसे भव्य चर्च ताल्लिन्न में बनाना चाहते थे। पर इसके लिए कोई उचित शिल्पकार उन्हें नहीं मिल रहा था। एक दिन एक लम्बा-सा आदमी ताल्लिन्न में प्रकट हुआ और उसने कहा कि वह एक ऐसा चर्च बना सकता है जिसे नगर के लोग कभी नहीं भूलेंगे। उसके बदले में उसने दस ड्रमों के बराबर सोने की माँग की। उसने यह भी कहा कि इस दौरान यदि नगर के लोगों को उसका नाम पता चल जाए तो वह सोना नहीं लेगा। नगर के बुज़ुर्गों ने स्वीकृति दे दी, हालाँकि उनके पास इतना सोना नहीं था। देखते-देखते चर्च की इमारत उठने लगी और वह दिन दूर नहीं था जब वह पूरी होनेवाली थी। नगर के बुज़ुर्ग चिन्तित थे कि वे उस व्यक्ति को देने के लिए इतना सोना कहाँ से लाएँगे, क्योंकि वे अभी भी उसका नाम नहीं जानते थे। इसी चिन्ता में डूबे नगर का एक बुज़ुर्ग एक रात नगर की गलियों में घूम रहा था। जब एक खिड़की से आती हुई यह लोरी उसने सुनीः सो जाओ, सो जाओ, मेरे नन्हे बेर/कल पिता घर आएँगे/पिता उलाव सोने के दस ड्रम लाएँगे। अगली सुबह यह बुज़ुर्ग उस जगह की ओर दौड़ा जहाँ चर्च बन रहा था। चर्च पूरा बन चुका था और वह लम्बा शिल्पकार उसकी मीनार पर चढ़ ईसा के सलीब को उस पर स्थापित कर रहा था। नीचे कई लोग ऊपर की ओर मुँह उठाए खड़े थे। बुज़ुर्ग ने चिल्लाकर कहा, "अरे उलाव, सलीब को सीधा करके लगाओ।" यह सुनते ही उलाव नाम का वह शिल्पकार नीचे गिर पड़ा और मर गया। उसके मुँह से एक साँप तथा एक मेंढक बाहर निकले। इसके बाद वे तीनों पत्थर में बदल गए। तब से यह चर्च उस शिल्पकार उलाव के नाम से जाना जाता है।

पटकूली प्लेटफॉर्म के पास ही वह सीढ़ीनुमा गली है जिसे पुराने ताल्लिन्न की "छोटी टाँग" कहा जाता है। यह नगर की सबसे सँकरी गली है और इसके बारे में भी कुछ किस्से हैं जो मैं यहाँ बयान नहीं कर रहा। इन सीढ़ियों से उतरते हुए हम नीचे समतल ज़मीन पर पहुँच गए, जहाँ पर श्री कास्पर ने हमसे विदा ली।

जब हम अपने आवास-स्थान के गेट पर पहुँचे तो वहाँ मैंने एक व्यक्ति को कचरे के बॉक्स में से कुछ चीज़ें बीनते हुए देखा। वह उन्हें एक पीले-से थैले में डाल रहा था। अपने कपड़ों, चेहरे व हाव-भाव से वह एक गरीब व्यक्ति लग रहा था। अगले दिनों नए ताल्लिन्न में घूमते हुए मैंने कचरा बीनते कुछ और लोगों को भी देखा। इसी तरह, मैंने सड़कों के किनारे, दुकानों के आगे फुटपाथ पर बैठे कुछ लोगों को भीख माँगते हुए भी देखा। वे अपने सामने पैसों के लिए एक कटोरा रख चुपचाप बैठे रहते थे। इनमें ज़्यादातर महिलाएँ थीं। पता चला कि ये पूर्वी यूरोप के देशों, खासकर रूमानिया से आई हुई महिलाएँ थीं। ताल्लिन्न की सड़कों और गलियों में कुछ ऐसे आदमी भी थे जिन्हें देखकर लगता था कि वे नशे की दवाइयाँ खाए हुए थे। परन्तु कुल मिलाकर यह साफ था कि ताल्लिन्न में भीख माँगनेवाले या नशाखोरी करनेवाले ज़्यादा लोग नहीं थे।

रात को दस बजे के आसपास लेखकों के आवास-स्थान पर अपने फ्लैट में जब हम सोने की कोशिश कर रहे थे तो सूर्य अभी भी चमक रहा था। सड़क के दूसरी तरफ सामने की इमारत में मरम्मत का काम चल रहा था। पास के कोनेवाले पेगासस नाम के रेस्तराँ के बाहर लगी कुर्सियों पर युवाओं का जमावड़ा था। वहाँ से रह-रहकर ऊँची-ऊँची आवाज़ें आ रही थीं, जैसे कि वे सब पी रहे हों। बीच-बीच में अचानक हँसने की आवाज़ भी आती थी। ये आवाज़ें दूर

वो घर जहाँ मैं जन्मा था

अशोक के नागरानी, 11 साल

मुझे याद है। अच्छी तरह याद है वो घर जहाँ मैं पैदा हुआ था। वो कराची में था। सबसे पहले हम बंडर रोड में एक छोटे-से घर में रहते थे। तब एक दिन मैंने अपने पापा को बोलते सुना कि यह घर छोटा पड़ता है। हम इसे थोड़ा और बना रहे हैं।

फिर कई दिनों तक हमारे घर काम चलता रहा। मैं रोज़ मज़दूरों, मिस्त्रियों को काम करते देखता। जब छत डल रही थी तो मैं देर तक वहाँ बैठा रहता। ऊपर से उड़ती चिड़ियों को देखता। सामने खड़े खजूर के पेड़ों को देखता। कितने ही खुश दिन मैंने उस घर में बिताए हैं।

एक दिन पापा आए और बोले, "हमें आज़ादी मिलने वाली है।" मैं हैरान था। "क्यों पापा, हम अभी भी तो आज़ाद हैं! मैं जो चाहता हूँ वो करता हूँ।" वो मुस्कराए और बोले, "तुम नहीं समझोगे। ब्रिटिश लोग जा रहे हैं। अब हम आज़ाद हो जाएँगे।"

तब मम्मी बोलीं कि शहर में दंगे फैल रहे हैं। अब हमें यहाँ से चले जाना चाहिए। मैंने पूछा, "दंगे क्या होते हैं?" मम्मी बोलीं कि लोग एक-दूसरे से लड़ रहे हैं। इसके एक-दो महीने बाद हमें कराची छोड़नी पड़ी। वो दिवाली का दिन था जब हम कराची छोड़ रहे थे। मुझे वो सारी दिवालियाँ याद आ रही थीं जो हमने यहाँ रहते मनाई थीं। कितने पटाखे छोड़ते थे हम। पर अब सब खत्म हो गया था। हमें इन सब को छोड़कर बम्बई जाना पड़ रहा था। मैंने पापा से पूछा कि हम क्यों कराची छोड़ रहे हैं। पापा ने कहा, "अब हमारी यहाँ कोई ज़रूरत नहीं बची।"

मैं कुछ नहीं समझा।

अब मैं बान्द्रा में रहता हूँ। मेरे सबसे अच्छे दोस्त मुसलमान हैं – अशरत, हुसैन, मुनअव्वर...। पर मैं उन्हें कभी जाने न दूँगा। मेरी एक इच्छा है। जब बड़ा हो जाऊँ तो मैं कराची जाऊँ। उस घर में जहाँ मैं पैदा हुआ था।

"शंकर्स वीकली" में 1951 से 1954 के बीच छपी 56 देशों के बच्चों की कुछ उम्दा रचनाओं को 1956 में शिक्षा विभाग ने *चाइल्ड राइटिंग* नाम से प्रकाशित किया। इस प्रयास को सलाम! इसी गुच्छे की कुछ रचनाएँ अगले अंकों में पढ़ेंगे। कार्टूनिस्ट शंकर (पिल्लै) को याद करने का इससे बेहतर तरीका और क्या होगा!

चित्रः दिलीप चिंचालकर

पन्ना टाइगर रिज़र्व में गुज़रे वो खूबसूरत दिन...

अजय गाड़िकर

एक दिन अखबार पलट रहा था कि नज़र एक अनूठे विज्ञापन पर टिक गई। इसमें देशभर के पक्षी प्रेमियों के लिए न्यौता था – गिद्धों की गिनती का न्यौता। मैं उत्सुक हुआ। पूरा विज्ञापन पढ़ा। पता चला कि पन्ना टाइगर रिज़र्व में गिद्धों की गिनती का तीन दिनी कार्यक्रम है। पिछले तीन सालों से हर जनवरी माह में यहाँ ऐसी गिनती हो रही है। जनवरी इसलिए कि इस समय यहाँ इस इलाके के गिद्ध तो होते ही हैं, प्रवासी गिद्ध भी आ जाते हैं। इसलिए यह समय इनकी गिनती के लिए एकदम सही होता है। मामला दिलचस्प था। मैं इसमें शामिल होने का मन बना चुका था।

पर इसमें शामिल होने की एक ज़रूरी शर्त थी – गिद्धों और उनकी विभिन्न प्रजातियों की पहचान की जानकारी होना। कुछ जानकारी तो मुझे थी पर कुछ और हासिल करने के लिए मैंने किताबें पलटीं। लोगों से बातचीत की...

कुछ ही दिनों में मुझे इसमें शामिल होने का बुलावा आ गया। तय दिन से एक दिन पहले उत्साह से भरा मैं अपने एक दोस्त के साथ इन्दौर से भोपाल के लिए निकल पड़ा। अगली दिन हमने भोपाल से सतना जाने के लिए रेवांचल एक्सप्रेस पकड़ी। सतना स्टेशन से हम सीधे पन्ना टाइगर रिज़र्व फॉरेस्ट के हिनोता गेट पर पहुँचे।

सुबह के 11 बज रहे थे। चारों ओर इतने पेड़ और हरियाली थी कि क्या बताऊँ! अर्जुन, पीपल, बरगद, महुआ के घने विशाल पेड़ोंवाला जंगल। विंध्याचल पर्वतमालाएँ। पठार और केन नदी घाटी भी। यानी गिद्धों को ढूँढने की एकदम माकूल जगह। अकसर नदी किनारे की घाटी गिद्धों के रहने की बढ़िया जगह होती है। इस कार्यक्रम में भाग लेने देश के कोने-कोने से 55 लोग आए थे।

कुछ देर में वहाँ के फील्ड डायरेक्टर मूर्ति जी आए और हमें इस पूरे कार्यक्रम की जानकारी दी। उन्होंने बताया कि विभिन्न प्रजातियों के गिद्धों की गिनती करने से हमें एक समय में वहाँ मौजूद गिद्ध प्रजातियों की संख्या पता चलती है। गिद्धों के लगातार कम होते जाने से यह बहुत महत्वपूर्ण हो गया है। एक अनुमान के मुताबिक पिछले 15-20 सालों में 87 से 99 प्रतिशत गिद्ध अपनी जान गँवा चुके हैं। यानी वे विलुप्ति की कगार पर पहुँच चुके हैं।

आपसी परिचय के बाद हमें गिद्धों के आकार, रंग, पंख आदि से इनकी विभिन्न प्रजातियों की पहचान करना बताया गया। फिर हम सब छोटे समूहों में बँट गए। हर समूह में एक फॉरेस्ट गाइड था।

लाल सिरवाला गिद्ध (Red Headed Vulture)

वयस्क गिद्ध का सिर हलके लाल रंग का होता है। पंखों का आधार स्लेटी रंग का होता है। व फैलाव 2 से 2.6 मीटर तक का होता है।

सभी समूहों के लिए 10 से 15 वर्ग किलोमीटर का इलाका तय किया गया। इसी में दोनों दिन उन्हें गिद्धों की पहचान और गिनती का काम करना था।

शाम को लगभग चार बजे हम दूधवा सेहा नाम की एक बेहद खूबसूरत जगह पर पहुँचे। यहाँ हमें खड़ी चट्टानों पर बैठे सौ से ज़्यादा गिद्ध दिखे। उनकी इतनी बड़ी संख्या देखकर हम हैरान थे।

इस कार्यक्रम का एक बेहद दिलचस्प हिस्सा था हमारा जंगल के बहुत भीतर की चौकियों में रहना। फॉरेस्ट गार्ड साल भर यहीं पर रहते हैं। यह बाहरी दुनिया से पूरी तरह से कटा हुआ इलाका है – न बाहरी लोग, न ई-मेल और न ही फोन में नेटवर्क।

हम सुबह 6 बजे के करीब निकलते और लगभग 10 से 12 किलोमीटर के इलाके में पेड़ों, चट्टानों पर बैठे गिद्धों की संख्या को नोट करते जाते। सभी प्रजातियों के वयस्क व बच्चे गिद्धों को अलग से नोट किया जाता। आमतौर पर गिद्ध सूरज चढ़ आने तक यानी लगभग नौ

सफेद गिद्ध (Egyptian Vulture)

पीले से नारंगी रंग का चेहरा। पंख हलके स्लेटी। उड़ते वक्त नीचे से देखने पर सफेद नज़र आता है।

गिद्ध को अकसर एक बढ़िया सफाई करनेवाले के रूप में जाना जाता है। वह यहाँ-वहाँ खुले में मरे पशुओं के माँस को खाकर पर्यावरण को साफ रखने में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। पर पिछले कई सालों से उनकी संख्या में लगातार गिरावट होती जा रही है। और इसका मुख्य कारण एक दवा –डाइक्लोफिनेक – बताया जा रहा है। अकसर मवेशियों के इलाज में इसका इस्तेमाल होता है। और अगर गिद्ध ऐसे मरे हुए मवेशियों का माँस खा लें जिनको हाल में ही यह दवा दी गई थी तो उनके गुर्दे खराब हो जाते हैं। जो उनकी मौत का कारण बनते हैं।

बताया जाता है कि 1990 के दशक के शुरू में भारत में गिद्ध भरपूर संख्या में थे। लेकिन अगले दस सालों में इसकी तीन प्रजातियाँ इतनी कम हो गईं कि अब वे विलुप्त होने की कगार पर आ गए हैं। गिद्धों के कम होने से मृत पशुओं का यहाँ-वहाँ पड़े-पड़े सड़-गल जाने का खतरा बहुत गहरा हो गया है। इससे बड़े पैमाने पर बीमारियाँ और संक्रमण फैलने का डर भी पैदा हो गया है।

इस समस्या की गम्भीरता को देखते हुए इन्हें बचाने के प्रयास तेज़ कर दिए गए हैं। भारत में पिछले पाँच सालों में चार ऐसी जगहें बनाई हैं जहाँ गिद्ध सुरक्षित वातावरण में अण्डे दे सकें और उनके बच्चे पैदा हो सकें। यहाँ न डाइक्लोफिनेक का खतरा है और न कोई दूसरा ही खतरा। उम्मीद है इस तरह गिद्धों की संख्या बढ़ सकेगी। सभी गिद्धों को फलने-फूलने के लिए ऐसा वातावरण मिल सके इसकी कोशिशें जारी हैं...।

बजे तक एक ही जगह पर बैठे रहते हैं। इससे उनको गिनना आसान हो जाता है। 9-9.30 तक कुछ गर्मी पाकर वे उड़ जाते हैं। गिद्धों की गिनती के साथ-साथ हम उनके घोंसलों और अण्डों की भी गिनती करते थे। और करीब साढ़े ग्यारह बजे हम वापस अपने ठिकानों पर चले जाते। वहाँ हम बहुत ही सादा मगर स्वादिष्ट खाना खाकर कुछ देर आराम करते। दोपहर को ढाई बजे उसी जगह फिर से गिद्धों की गिनती करने निकल पड़ते। शाम तक वे अपने घोंसलों में लौट आते। अगले दिन भी गिनती का तरीका यही रहता। उस जगह पर किस प्रजाति के कितने गिद्ध हैं इसके लिए दो दिनों में की गई गिनती का औसत निकाला जाता। इस दौरान हमने गिद्धों की कई स्थानीय प्रजातियाँ देखीं – वाइट रम्पड वल्चर, लॉन्ग बिल्ड वल्चर, रेड हेडिड वल्चर और इंडियन इजिपशियन वल्चर। सर्दियों में आए कई मेहमान गिद्धों से भी यहाँ मुलाकात हुई।

रात में जंगल में रहना एक अद्‌भुत अनुभव था। जंगल की आवाज़ें सुनना, आसमान में इतने ढेर सारे टिमटिमाते तारे दिखना एक अचम्भित कर जानेवाला अनुभव था। शहर में कहाँ दिखते हैं इतने साफ आसमान में इतने सारे तारे! जंगल रात में भी उतना ही जगा रहता है जितना दिन में। किस्म-किस्म की आवाज़ें... पेड़ों की, हवा की, जानवरों की, कीड़े-मकोड़ों की... और खामोशी की भी। कभी न भूलनेवाला एक अजब जादुई अनुभव था वो!

तीसरे दिन हम फिर से हिनोता की ओर चल दिए। रास्ते में खूबसूरत केन नदी दिखी। उसके किनारे ढेर सारे मगरमच्छ धूप सेंक रहे, सुस्ता रहे थे। साथ ही यहाँ के और भी कई बाशिन्दे दिखे – जंगली सुअर, हिरन, साम्भर, भालू और उसका बच्चा, नीलगाय, चिंकारा... और उन रंग-बिरंगी चिड़ियों को कैसे भूल सकता हूँ...

हिनोता में हम सब फिर एक बार मिले। इस बार हमारे पास एक-दूसरे को बताने के लिए, एक-दूसरे से सुनने की ढेरों बातें थीं। क्या-क्या देखा, कहाँ देखा, कब देखा, क्या-क्या सुना, कैसा लगा...। इन दो दिनों के साथ ने कितनी ही दोस्तियों को जन्म दिया था। कितनी ही यादें हम में बस गई थीं। हमने सबको समेटा और शाम पाँच बजे की गाड़ी से इन्दौर के लिए निकल गए...

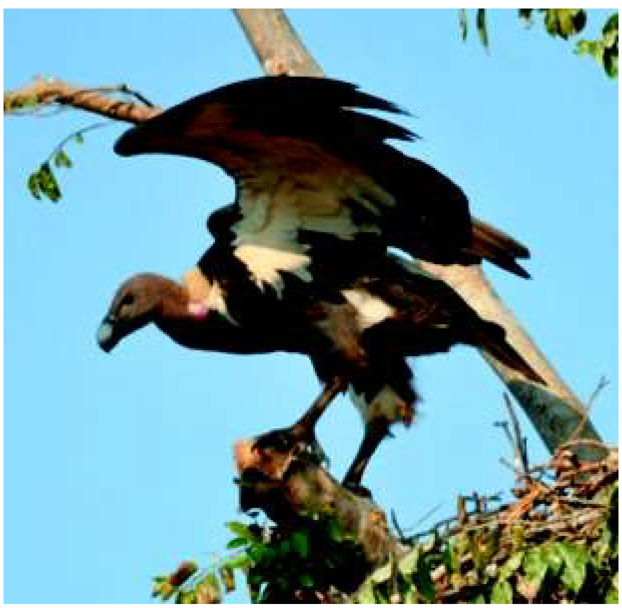

बंगाल का गिद्ध (White Rumped Vulture)

इनके सिर व गर्दन पर बाल नहीं होते। गर्दन के छोर पर सफेद पंखों का गुच्छा होता है। सिर पर गुलाबीपन की झलक दिखती है। शरीर काला होता है। चोंच चमकती सफेद होती है जिसके किनारे गहरे रंग के होते हैं।

भारतीय गिद्ध (Long billed Vulture)

सिर व गर्दन गहरे रंग की और बिना बाल की होती है। पंख चौड़े, पूँछ पर छोटे पंख होते हैं। इनका फैलाव 2 से 2.3 मीटर तक होता है। पंख हलके स्लेटी व किनारों पर काले रंग के होते हैं।

माथापच्ची

नाम इसका छोटा है,
काम हैं इसके बड़े
कुछ लोग बैठे हैं तो,
कुछ लोग खड़े (नाक)

यह पहेली समीर,
किलकारी बाल भवन, पटना
ने भेजी है।

गाय → चाय → चाकू → डाकू

1 ऊपर तुमने देखा कि किस तरह सिर्फ एक-एक अक्षर को बदलते हुए हम "गाय" शब्द से "डाकू" शब्द तक पहुँचे। इसी तरह तुम्हें एक-एक अक्षर बदलते हुए "शक्कर" शब्द से "कबाड़ी" शब्द तक पहुँचना है। शर्त यह है कि हर बार बननेवाला शब्द सार्थक होना चाहिए और ऐसा कम से कम बारी में करना है।

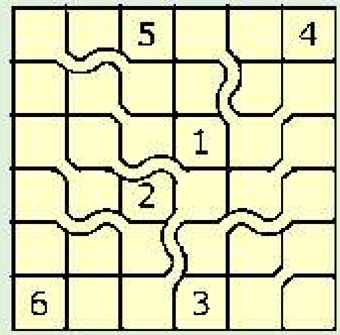

2 इस ग्रिड की हर पंक्ति व कॉलम में 1 से 6 तक के अंक भरने हैं। बस ध्यान रखना कि जुड़ी हुई ग्रिडों में समान अंक हों।

3 **बर्फ में बदलने पर पानी सिकुड़ता है या फैलता है?**

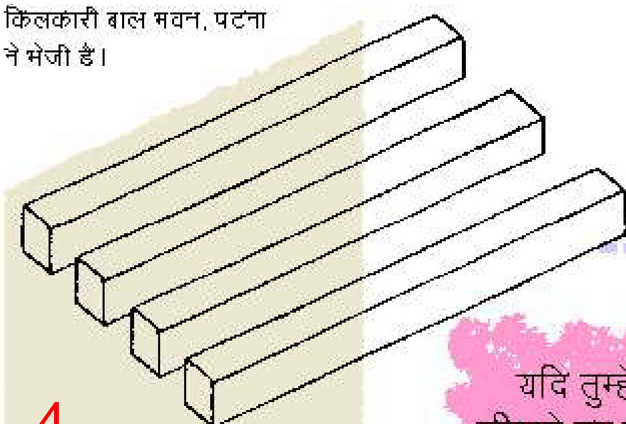

4 इस चित्र में कितनी छड़ियाँ दिखाई दे रही हैं?

यदि तुम्हें कुछ नया सीखने का मौका मिले तो तुम क्या सीखना चाहोगे और क्यों?

5 आरिफ के पास सफेद, पीले व नारंगी रंग के कुल 60 फीते हैं। सफेद फीतों की संख्या पीले फीतों की संख्या से 4 गुनी है। और नारंगी फीतों की संख्या पीले फीतों की संख्या से 6 अधिक है। आरिफ के पास हर रंग के कितने फीते हैं।

6 तराजू के एक पलड़े में पानी से भरा गिलास और एक पत्थर रखो। दूसरे पलड़े में बाट रखकर इसे सन्तुलित कर लो। अब पत्थर को उठाकर पानी के गिलास में छोड़ दो। क्या इससे तराजू के सन्तुलन पर कोई असर पड़ेगा?

शेजारी

मराठी भाषा के इस शब्द का मतलब होता है – पड़ोस।

इस कॉलम में हर महीने मराठी साहित्य की रचनाएँ तुम पढ़ सकोगे। गौरी कानितकर की मदद से यह कॉलम सम्भव हुआ है। उनकी संस्था यूनीक फीचर्स बड़ों व बच्चों के लिए साहित्य तथा अन्य सामाजिक मुद्दों पर पत्रिकाएँ तथा किताबें प्रकाशित करती है।

अन्दर के और बाहर के

विन्दा करन्दीकर

अनुवादः स्मिता लोंढे

मुझे अब ऐसा लगता है कि आदमी की असल में दो ही जातियाँ हैं: “अन्दर के” और “बाहर के”। इस विचार की हलचल मेरे मन में बीते कितने महीनों से चल रही थी। पर परसों ट्रेन से पूना से आते समय जो मार्मिक अनुभव मुझे हुआ उससे यह स्पष्ट हो गया।

स्टेशन पहुँचने की मुझे जल्दी थी। पहले ही देर हो गई थी। पर मैं अन्दर घुसूँ इससे पहले गाड़ी की सीटी की ज़ोरदार आवाज़ हुई। ऐसे वक्त अपने मन की स्थिति बड़ी अजीब होती है। सीटी किसी भी गाड़ी की क्यों न हो लगता है जैसे अपनी ही गाड़ी की है। पैरों में जूते होने से दौड़ना भी आसान न था। ऐसे में लगभग दौड़ने जैसा तेज़-तेज़ चलते हुए मैंने ट्रेन का दरवाज़ा पकड़ा। मैं उसे खोलने की कोशिश करूँ इससे पहले अन्दर के लोगों का शोर हुआ, “अरे साहब! यह सेकंड का डब्बा है। आगे जाओ।”

मज़ेदार बात है ना – अन्दर के लोगों को बाहर के सारे लोग थर्ड क्लास के ही लगते हैं।

इतने में दूसरा बोला, “अरे, अगले डिब्बे में इतनी जगह है। पूरा खाली है। फिर यहाँ क्यों घुसे आ रहे हो? अगला डिब्बा पूरा खाली है! उधर जाओ।” अन्दर के लोगों को खुद का डिब्बा छोड़कर बाकी सब अगले डिब्बे हमेशा खाली दिखते हैं!

चित्रः दिलीप चिंचालकर

पर उसी दरवाज़े से चिपके रहने के सिवा मेरे पास कोई और चारा न था। मैं दरवाज़ा खोलने की कोशिश कर रहा था और "अन्दर के" लोग मेरा विरोध कर रहे थे। उनकी भी गलती न थी। गाड़ी में भयानक भीड़ थी। दरवाज़ा खोलना तक मुश्किल था। ऐसे में दरवाज़े से चिपककर खड़े एक लम्बे-चौड़े आदमी ने द्वारपाल का काम पूरी निष्ठा से निभा रखा था। अन्दर के लोग उसकी तारीफ कर रहे थे। इससे उसमें विजेता होने के भाव आ रहे थे।

आखिरकार दरवाज़े का मोर्चा छोड़कर मैंने भेदने की नीति से खिड़की से हल्ला किया। बिस्तर अन्दर फेंका। कूदकर सिर खिड़की के अन्दर ठूँसा और पैर उठाकर खुद का त्रिशंकु कर दिया! मेरी ये हालत देखकर अन्दर के लोगों को मुझपर दया आ गई। गाड़ी चलने लगी थी और मैं अन्दर खींच लिया गया था। और अब उस महाकाय द्वारपाल के कन्धे से कन्धा मिलाकर खड़ा था।

पर आश्चर्य की बात यह है कि मेरे अन्दर आने के दस मिनट के भीतर ही मेरा कायापलट हो गया। द्वारपाल पर आया गुस्सा भी जल्दी ही खत्म हो गया। हम पुराने दोस्तों की तरह गप्पें मारने लगे थे। उसके दिए केले मैंने खाए। मेरी सिगरेट उसने पी। और बाद में हम दोनों अपने-अपने बिस्तर जोड़कर उस पर पसर गए। बाहर मैं उसका सिर फोड़ने का विचार कर रहा था। पर अब उसी की टोली में शामिल हो गया था। मेरी जात बदल गई थी।

अगले स्टेशन पर यात्रियों की एक और टोली हमारे डिब्बे में घुसने लगी। हम दोनों ने उनके विरुद्ध एक संयुक्त हल्ला बोल दिया। और "अन्दर के" लोगों के हितों की "बाहरी लोगों" से रक्षा में जुट गए। बाहरवाला जब अन्दरवाला हो जाता है तो वो कितना बदल जाता है – इसका मुझे पहली बार अहसास हुआ।

चकमक

करन्दीकर के
समग्र लघु निबन्ध से एक अंश

नाम में क्या रक्खा है...

(पेज 27 का शेष भाग)

झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई के बारे में हम कहते हैं – "खूब लड़ी मर्दानी"। यानी वो ऐसे लड़ी जैसे पुरुष लड़ते हैं। किसी औरत को मर्दानी कहकर हम उसकी ताकत और हिम्मत की सराहना करते हैं। पर किसी पुरुष को स्त्रैण (स्त्री जैसा) उसका मज़ाक उड़ाने के लिए ही कहा जाता है। किसी आदमी को जब कायर माना जाता है तो कहते हैं कि वो हाथों में चूड़ियाँ पहनकर बैठ जाए। सदियों से औरतों को आदमियों से हीन माना जाता रहा है। और इसकी छवि हमें हमारी भाषाओं में दिखती है।

कितनी ही औरतें डॉक्टर क्यों न बन रही हों पर फिर भी हम उन्हें लेडी डॉक्टर कहते हैं सिर्फ डॉक्टर नहीं। मानो डॉक्टरी सिर्फ आदमियों का पेशा होता है। इसी तरह जब कोई आदमी नर्स बनता है तो हम उसे "मेल नर्स" कहते हैं। क्योंकि नर्सिंग आमतौर पर औरतों का पेशा माना जाता है और डॉक्टरी आदमियों का।

भारतीय सेना में आजकल महिलाएँ भी भर्ती होती हैं। पर इनके लिए अलग शब्द नहीं हैं – जवान, सैनिक – जैसे शब्द पुरुषों के लिए ही बने हैं। अँग्रेज़ी में आजकल चेयरमैन, कैमरामैन जैसे शब्दों की बजाए चेयरपर्सन, कैमेरापर्सन आदि शब्द इस्तेमाल किए जाते हैं। एक सचेत प्रयास किया जा रहा है ताकि भाषा में लिंग के आधार पर भेद-भाव मिटाया जा सके। इससे हो सकता है कि महिलाओं के बारे में सोचने का ढंग भी धीरे-धीरे बदल जाए। तब लोग कैथी तूफान को चार्ल्स तूफान से कमज़ोर नहीं समझेंगे। चकमक

जुलाई की चित्र पहेली हल

इ	न्द्र	ध	नु	ष		शि		प
ल्ली		नि		ट		म	च्छ	र
	ब	या		को	य	ला		छा
	ता		बा	ण			सु	ई
	शा	ख			कै	म	रा	
ब		र		द	री		ही	रा
टु		गो	दा	म		मू		स्ता
आ	का	श		क	ने	र		
	जू		ह	ल		त	स्वी	र

एक कहानी

विनोद कुमार शुक्ल

अकेले पेड़ों का
एक अकेला जंगल
जिसमें कैद
अकेली एक लड़की
बाकी सब पहरेदार।

जिस जंगल में लड़की कैद थी, उस जंगल का नाम अकेला जंगल था। घना जंगल था। पर जंगल में अकेले-अकेले पेड़ थे। लड़की का नाम चुग्गा था। अकेले नाम के जंगल में चुग्गा बहुत अकेली थी। उसकी परछाईं भी उसके साथ नहीं थी। जब उसकी परछाईं नदी के जल में पड़ रही थी तो उसने उसे नदी के जल में छोड़ दिया और कहा कि नदी के जल पर बहकर जाए, जो मिले व्यथा बताए और कोई उसे छुड़ा ले। वह कौन होगा?

तब शान्त बहती नदी में बाढ़ का एक रेला आया। और परछाईं चुग्गा से अलग हो गई। बाढ़ के पानी में बहने लगी।

बिना परछाईं के चुग्गा बहुत अकेली हो गई। पानी का जो अचानक रेला आया था उसके बाद भी पानी रुका नहीं था। नदी में बाढ़ आ गई थी। बाँध टूटा होगा या दूर ज़ोरों की बारिश हुई हो। बादल इधर भी घिर आए और बारिश होने लगी। ऊँचाई पर होने के कारण अकेला जंगल बाढ़ से बचा रहा। अगर बाढ़ आ जाती तो चुग्गा बचाव की कोई जुगत करती, और तैरते-तैरते कैद से बाहर निकल आती। परछाईं मिल जाती और घरवालों से मिल जाती।

चुग्गा पर बहुत सख्त पहरेदारी थी। परन्तु पहरेदारों ने उसकी परछाईं पर ध्यान नहीं दिया। कोई सोच भी नहीं सकता था कि चुग्गा अपनी परछाईं को छुड़ाने का सन्देश देकर कहीं भेज सकती है। नहीं तो उस पर भी पहरा रखते। और चुग्गा पर पहरा बढ़ जाता।

पहरेदारों ने अपने कड़े पहरे से जंगल के जानवरों को दूर रखा था। जो थे उनको भगा दिया या मार दिया था। चिड़ियों तक को भगा दिया था। तितलियों को भी कि चुग्गा तितली से बात न कर ले और अपने कैद में होने की बात न बता दे।

बाढ़ से नीचे के इलाके डूबने लगे थे। नदी जो अपनी पगडण्डी जैसे पुराने रास्ते पर बहा करती थी अब चारों तरफ फैल गई थी। बहते पानी में परछाईं भटक गई। और भटकते हुए एक डूब रहे गाँव में पहुँची। जो थे वे अपनी जान किसी तरह बचा पाए, दिख रहे थे। लोग पेड़ों, छप्परों, छतों पर चढ़े दिख रहे थे।

चित्रः अतनु राय

परछाईं को भटकते हुए लगा कि अब वह बाढ़ उतरने के बाद ही नदी के उस रास्ते को पा सकेगी जिस रास्ते वह चुग्गा के पास लौट सके। चलते समय जो मछलियाँ उसके साथ चली थीं वे अब नहीं हैं। भटक गईं? उसे लौटने की चिन्ता थी और काम हुआ नहीं था।

जितने लोग दिखे सब अपनी जान बचाने में लगे लोग दिखे। परछाईं की बात कौन सुने? पानी में एक नाव दिखी। नाव में एक लड़की थी। वह नाव से दूसरों को बचाती हुई दिख रही थी। एक बूढ़ा पेड़ पर बैठा दिखा। पेड़ के नीचे पानी का बहाव तेज़ था। परछाईं उस तेज़ बहाव पर जाने से बच रही थी।

तब लड़की ने बूढ़े से चिल्लाकर कहा, "बाबा नाव में बैठ जाओ। घर छोड़ दूँगी।"

"मैं अपने घर के आँगन के पेड़ पर बैठा हूँ। घर डूब गया। देखो, डूबा छप्पर दिख रहा है। मेरे बेटे, घर-पड़ोस के लोग, दूसरे गाँव खेतों में कमाने गए हैं। बाढ़ आने के पहले चले गए थे। आज नहीं तो कल पानी उतर जाएगा!"

बूढ़ा किसी सुरक्षित जगह जाने को तैयार नहीं हुआ। लड़की के पास रोटी थी। वह उस अध-डूबे पेड़ के पास नाव ले गई। पेड़ के नीचे। नाव में खड़े होकर उसने पेड़ की डाल को पकड़ा। और दूसरे हाथ से बूढ़े को साथ लाई रोटी पकड़ाई। बूढ़े ने रोटी ली। उसे ज़रूरत थी।

बूढ़े ने कहा, "लोरमी! अब तुम जाओ। मैं डाल पर बैठे-बैठे बाढ़ उतरने का रास्ता देखूँगा। लगता है घर धसक गया। अब छप्पर नहीं दिख रहा। पानी में धसकने की हलचल दिख रही है।"

तब नाव थोड़ा डोल गई थी।

लौटते समय लोरमी ने एक हिरण के बच्चे को बचाया। नाव में वह खड़ा नहीं हो पा रहा था। बार-बार गिर पड़ता था। नाव हिलती-डुलती थी इसलिए भी। वह भीगा हुआ थर-थर काँप रहा था। शिथिल हो चुका था।

पानी के साथ बहती परछाईं ने नाव खेती लड़की को देखा कि एक छोटी-सी लड़की नाव खे रही है।

लोरमी ने भी परछाईं को देखा। परछाईं देखकर, पहले उसे शक हुआ कि एक डूबी हुई लड़की है। फिर पास जाने पर आश्चर्य से देखा कि एक सुन्दर लड़की की सुन्दर परछाईं है। केवल परछाईं!! और जिसकी है वह कहाँ है? क्या परछाईंवाली लड़की डूब गई? जल के ऊपर, परछाईं छोड़ कैसे डूबी! परछाईं तैर रही है और डूबनेवाली लड़की को तैरना नहीं आता होगा।

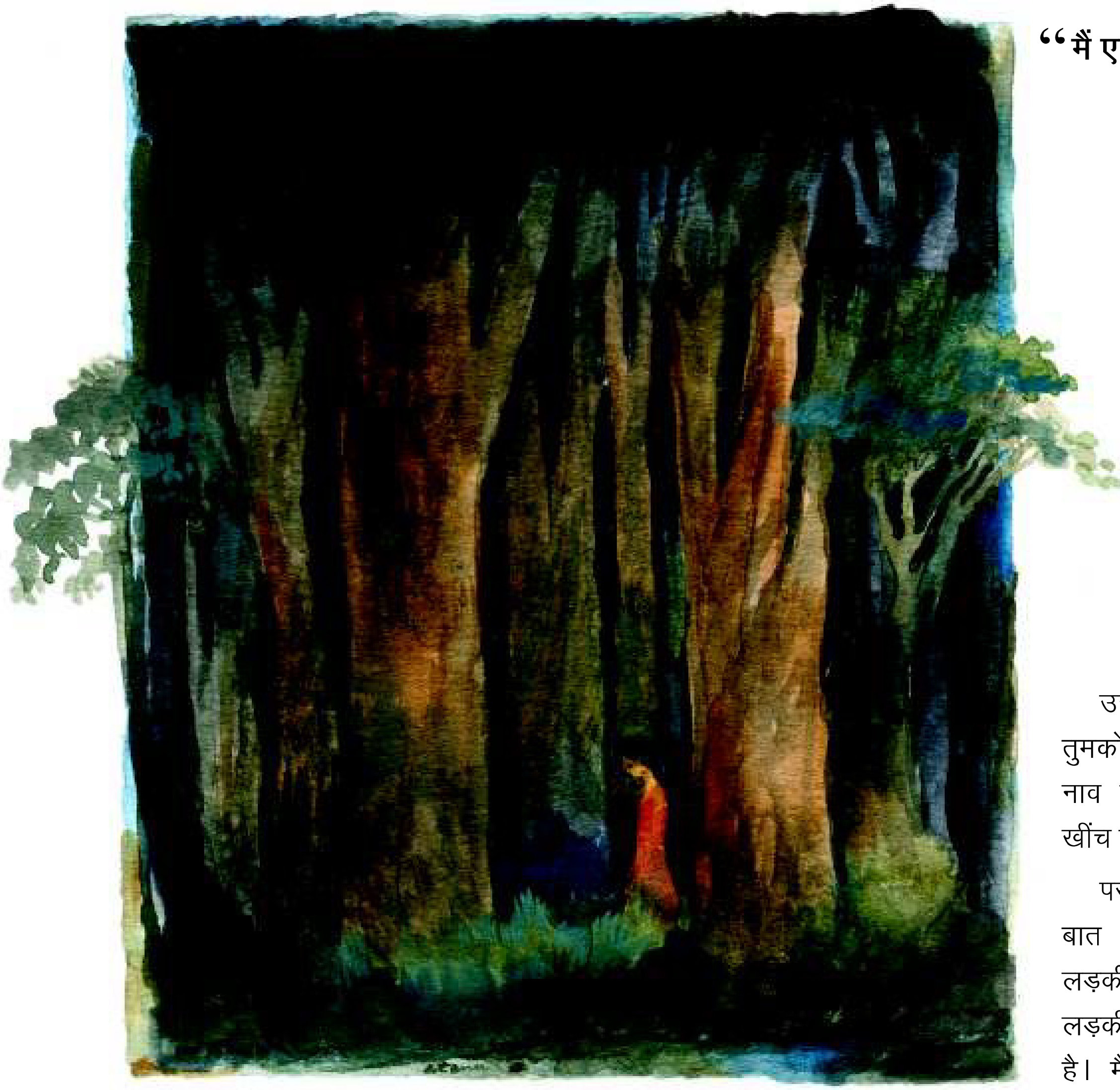

"मैं एक लड़की की परछाईं हूँ और वह लड़की दूर कैद में है।"

उसके मुँह से निकला, "क्या! तुमको बचाना है? तुम डूब रही हो? नाव में चढ़ जाओ। मैं तुमको खींच लूँगी।"

परछाईं ने कहा, "पहले मेरी बात ध्यान से सुनो। मैं एक लड़की की परछाईं हूँ और वह लड़की दूर कैद में है। उसे बचाना है। मैं उसकी परछाईं उसकी व्यथा कहने दूर से आ रही हूँ। कोई उसे बचा ले।"

लोरमी ने देखा, परछाईं उसकी तरफ तैरते हुए आ रही है। पास पहुँचकर परछाईं ने लोरमी से कहा, "मैं चुग्गा की परछाईं बोल रही हूँ।"

लोरमी चौंक गई। उसने आज तक किसी परछाईं को बोलते नहीं सुना था। बोलनेवाले की परछाईं ज़रूर देखी थी। ढिबरी, मोमबत्ती के उजाले में स्वयं की बोलती परछाईं देखी। अपने हाथ से अपना मुँह दबाकर बोलना बन्द किया और बन्द होते मुँह की परछाईं भी देखी। घर पर अँधेरा होने पर जब भी वह ढिबरी, कन्दील या मोमबत्ती जलाती तो अपनी और इधर-उधर की परछाइयों के चलचित्र देखती। परछाइयों का भी संसार था।

"तुम मुझे उस लड़की तक ले चलो। मैं उसे छुड़ा लूँगी।" लोरमी ने कहा।

लोरमी ने इतनी सुन्दर परछाईं कभी देखी नहीं थी। जिसमें नाक-नक्शे, पलकें तक साफ दिखें। और दुखी होने पर आँखों में आँसू भी। अभी जब बोल रही थी तब उसके होंठ दुख से काँप रहे थे।

"चलो! लड़की के पास अभी ले चलो।" लोरमी ने कहा।

परछाईं ने बिना पलक झपके लोरमी को क्षण भर ध्यान से देखा कि क्या लोरमी सचमुच चुग्गा को छुड़ा सकेगी!

लोरमी एक दुबली-पतली कुछ कम साँवली, मज़बूत लड़की थी। मोटे कत्थई रंग की, माँ की बची आधी साड़ी के टुकड़े को कास्टा लगाकर वह पहनी हुई थी। साड़ी का किनार बहुत चौड़ा था। जैसे किनार की केवल साड़ी। बहुत फुर्तीली कि नाव सहित उड़ सकती है। चुस्त सलूका। वह एक

आदिवासी मछवारन लड़की थी। नदी के किनारे रहती थी कहने के बदले यह कहना उचित लगता कि नदी उसके किनारे रहती थी। बल्कि नदी का मझधार उसके किनारे रहता था। दिन का अधिकांश समय उसका नदी में बीतता। बचपन से, नदी में तैरती नाव के झूले में उसे नींद आती थी। नदी में वह जहाँ जाती लगता नाव के साथ नदी चलती। वह जिधर जाएगी नदी उधर जाएगी। नदी में अधिक समय बीतने के कारण वह भीगी हुई रहती। वह एक ऐसी मछली थी जो ज़्यादा, एक लड़की थी।

लोरमी ने तेज़ी-से नाव खेना शुरू किया। नाव के आगे तैरती हुई परछाईं थी।

लोरमी ने परछाईं से पूछा, "तुम जिसकी परछाईं हो उसका नाम क्या है?"

"चुग्गा! और मेरा नाम चुग्गी है।" परछाईं ने कहा। नाव परछाईं के बराबर तैर रही थी। चुग्गी ने देखा कि पतवार खेती लोरमी की बाँह में गोदना था। गोदने से गुदी हुई एक नाव और एक पतवार थी। ठुड्डी पर गोदने के दो बिन्दु थे।

परछाईं नाव से पिछड़ रही थी। दोनों बहाव से उलटे जा रहे थे। परछाईं को तैरते जाने में कठिनाई हो रही थी।

लोरमी ने कहा, "क्या तुम नाव में नहीं बैठ सकतीं?"

"मैं नाव में तो नहीं बैठ सकती पर नाव की परछाईं में बैठ सकती हूँ।"

चुग्गी नाव की परछाईं पर जैसे सवार हो गई – नाव की परछाईं पर चुग्गी परछाईं।

विपरीत दिशा में नाव ले जाना कठिन तो था। नाव जैसे हाँफने लगी, पर लोरमी नहीं।

एक हिरणी नदी के किनारे-किनारे नाव के साथ दौड़ते दिखी। पहले लोरमी का ध्यान नहीं था। नाव आगे बढ़ जाती तो दौड़कर नाव के साथ हो जाती। नाव में हिरणी का बच्चा था। माँ के पास जाने के लिए बच्चा पानी में कूदने की कोशिश करता। हिरणी भी पानी में कूदकर बच्चे के पास जाना चाहती। किनारे की एक जगह देख-सुनकर, नाव को लोरमी ने किनारे से सटाकर खड़ा किया। गोद में हिरण के बच्चे को लेकर उतरी और ज़मीन पर छोड़ दिया पर शायद छोड़ने के पहले ही वह कूद गया।

परछाईं ने कहा, "लोरमी जल्दी चलो देर हो रही है।"

लोरमी ने भी कहा, "हाँ! देर हो रही है।"

विपरीत धारा में नाव कुछ आगे बढ़ती। पतवार चलाने में ताकत लगती। धारा पीछे भी ढकेलती।

लोरमी ने तब धारा से कहा, "धारा तुम क्या धीमे बह सकती हो?"

धारा ने जैसे सुन लिया। और वह धीरे-धीरे बहने लगी। पतवार चलाना आसान हो गया।

लोरमी ने धारा से फिर कहा जैसे आज़माने के लिए कहा, "धारा! अब तुम जहाँ हमें जाना है बहा ले चलो। एक लड़की कैद में है। उसे छुड़ाना है। कहीं देर न हो जाए।"

हुआ यह कि पानी में अचानक हलचल हुई। और धारा उलटकर नाव को बहा ले गई। लगता एक तेज़ पानी की लहर नाव और परछाईं को हवा में जैसे बहाकर नहीं उड़ाए लिए जा रही है। धारा को इस बात का ध्यान था कि नाव और परछाईं सुरक्षित रहें। चट्टानों से टकरा न जाएँ। दरअसल धारा पर नाव सहित सब सवार थे।

लड़की के कैद में होने की जगह पास आ गई। परछाईं ने धारा से कहा, "धारा! धीरे बहो। जहाँ रुकने को कहूँगी रुक जाना।"

धारा धीरे बहने लगी। परछाईं वहाँ की हवा, आकाश और पेड़ों को जानती थी। अकेला जंगल शुरू हो गया था।

"यहाँ रुकना।" परछाईं ने कहा। धारा रुकी तो नाव रुक गई। वे उसी जगह पर थे जहाँ चुग्गा ने परछाईं को अपने से अलग किया था।

"नाव को छुपा दो। मैं तुम्हारी मदद करती, परन्तु मैं

"पेड़ की परछाईं पर चढ़ी हुई लोरमी की परछाईं नदी में दिख रही थी।"

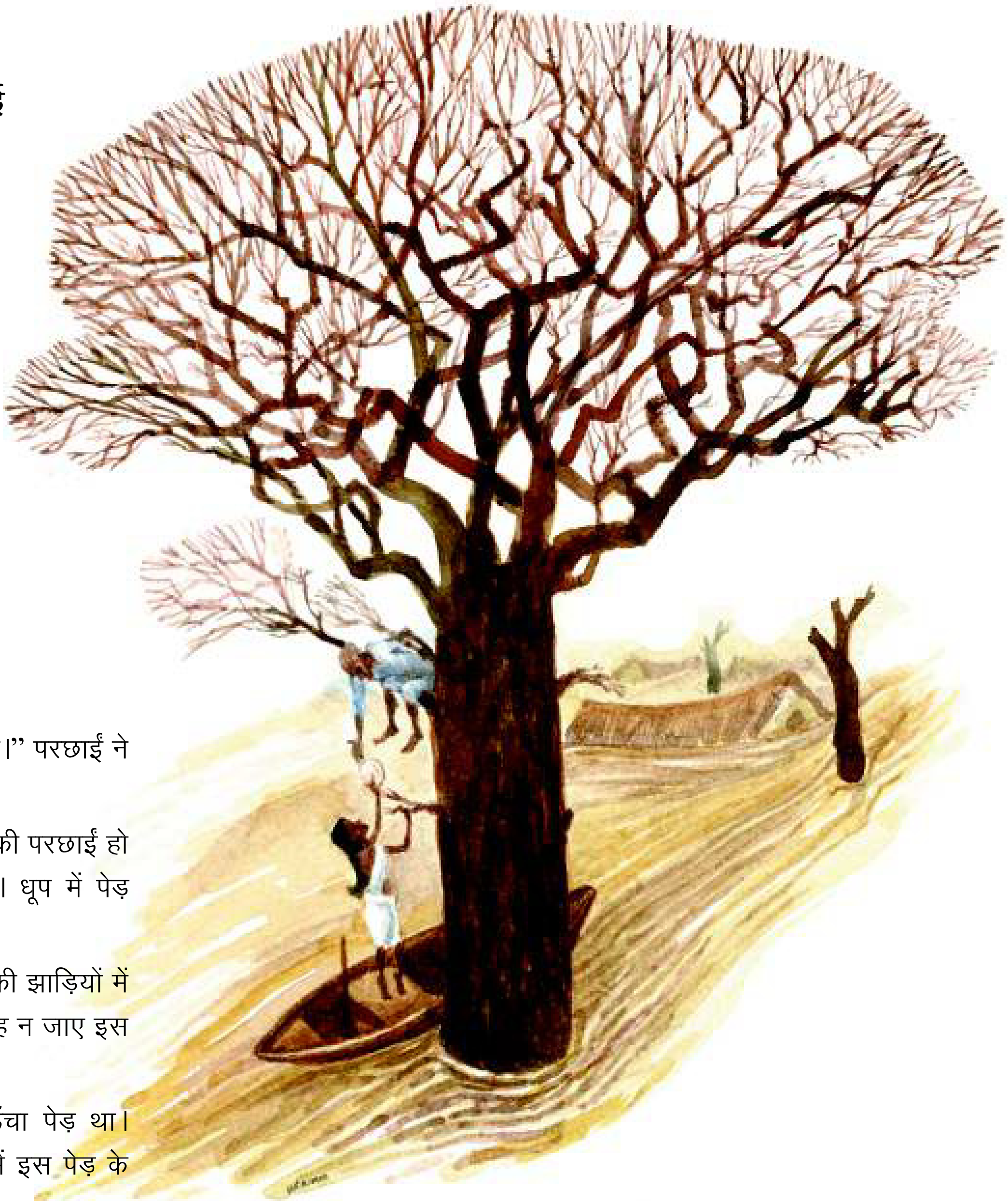

परछाईं तुम्हारी मदद कैसे करूँ।" परछाईं ने फुसफुसाकर कहा।

लोरमी ने कहा, "तुम जिसकी परछाईं हो उसकी मदद तो कर रही हो। धूप में पेड़ परछाईं से मदद करते हैं।"

लोरमी ने नाव को किनारे की झाड़ियों में छुपा दिया था। नाव पानी से बह न जाए इस बात का उसने ध्यान रखा था।

वहीं पास में एक घना ऊँचा पेड़ था। लोरमी ने परछाईं से कहा, "मैं इस पेड़ के ऊपर छुपकर बैठ जाती हूँ।"

परछाईं ने कहा, "तुम जल्दी पेड़ पर चढ़ जाओ। चुग्गा के आने का समय हो गया। नदी के किनारे आने के लिए उसे बाहर निकाला गया है। चुग्गा के पैरों की आहट से मेरे पैरों में कम्पन होती है।"

लोरमी फुर्ती से पेड़ पर चढ़ गई।

चारों तरफ सन्नाटा था। एक भी चिड़िया नहीं थी। कम से कम एक चिड़िया तो होनी चाहिए जिससे वह अकेली चिड़िया कहला सकती। चट्टान पर एक अकेला मगर लेटा था, नहीं बैठा था। मगर का बैठना, लेटने जैसा था। उसके बैठने या खड़े होने की ऊँचाई लेटने की ऊँचाई के बराबर थी। लोरमी जिस ऊँचे पेड़ पर बैठी थी, उसकी परछाईं नदी पर थी। पेड़ की परछाईं पर चढ़ी हुई लोरमी की परछाईं नदी में दिख रही थी। लोरमी की परछाईं के पास चुग्गा की परछाईं तैरते हुए आई। परछाईं के तैरने से कोई आवाज़ नहीं हुई। सन्नाटा बढ़ गया था।

पास आकर चुग्गी ने लोरमी की परछाईं से पूछा, "क्या चुग्गा आते हुए दिख रही है।"

लोरमी की परछाईं ने फुसफुसाकर कहा, "नहीं।"

इस पर और सन्नाटा बढ़ गया।

क्षण भर बाद चुग्गी ने लोरमी की परछाईं से कहा, "चुग्गा चल पड़ी। उसके साथ पहरेदार भी हैं। अब तुमको चुग्गा दिखाई देगी। मेरे पैरों पर उसके चलने की कम्पन बढ़ गई है।"

लोरमी ने कहा, "हाँ! दिखी। चार पहरेदार हैं।"

चुग्गी ने कहा, "और पहरेदार होंगे। चुप हो जाओ। पहरेदारों पर ध्यान दो।"

शाम हो गई थी। एकदम सन्नाटा हो गया था। जो मगर दिख रहा था, पता नहीं कहाँ चला गया था। न दिखने से उसका पहले का दिखना इतना अविश्वसनीय लगने लगा कि शायद पहले नहीं दिखा था। बिना बादल का आकाश अकेला दिख रहा था। एक नदी अकेली थी। अकेले जंगल में पेड़ों का झुण्ड, अकेले पेड़ों का झुण्ड। पहरे में एक लड़की इधर आ रही थी। लोरमी सोच रही थी। और तैयार थी।

लोरमी की परछाईं ने चुग्गी से कहा, "चुग्गा आ रही है। तुमने पहचाना।"

लोरमी की परछाईं ने कहा, "तुम्हारी जैसी। सचमुच की तरह।"

पहरेदार चुग्गा को नदी के किनारे टहलने देकर इधर-उधर पहरा देने फैल गए।

चुग्गा नदी के किनारे एक जगह खड़ी हो गई जहाँ वह खड़ी होती थी। उसकी परछाईं उसी जगह थी, उसके वहाँ होने से जहाँ पड़ती थी। यह देख चुग्गा जान गई कि उसके स्वतंत्र होने की बेला आ गई है।

चुग्गी ने चुग्गा से कहा, "स्वतंत्र होने को तैयार रहो। छुड़ाने लोरमी आई है।"

चुग्गा ने कहा, "पहरेदार दूर हैं। मुझे क्या करना है?"

चुग्गी ने कहा, "लोरमी नाव लाई है।"

तभी लोरमी पेड़ से बन्दर की तरह उतरी। नाव को निकाला। नाव को पतवार का एक झटका लगा और नाव पहुँच गई थी जहाँ चुग्गा नाव को देखते ही नदी में कूद चुकी थी। चुग्गा वहीं कूदी थी जहाँ उसकी परछाईं थी। चुग्गा लोरमी की सहायता से नाव में चढ़ चुकी थी। उन्हें लौटा ले जाने नदी की धारा तेज़ी-से बह रही थी। और पहरेदार जब तक कुछ करते नाव दूर चली गई। सब पहरेदारों की आँखों में जाती दिखती हुई नाव तिनके जैसे पड़ी थी। सब आँख मलते खड़े रह गए थे। जो देख रहे थे उस पर विश्वास नहीं हुआ। पहरेदारों को केवल अपने ऊपर पहरा देना चाहिए, किसी दूसरे पर नहीं।

वे एक तेज़ धारा में थे। कभी लगता पानी के ऊपर हवा में नाव उड़ाते जा रहे हों। कभी लगता हवा बहने की जगह तेज़ धारा बह रही है जिस पर नाव है, या दोनों जैसा एक साथ लगता। तेज़ उड़ते रहें और तेज़ बहते रहें में ठनी थी। दोनों अपनी जगह बदल देते थे।

अकेला जंगल अकेला पीछे रह गया। अब जो जंगल आ रहा था वही जंगल था हरा-भरा जहाँ सब मिल जाते हैं। यह मिल जाने का जंगल था।

लोरमी ने तेज़ धारा से कहा, "तेज़ धारा धीमे हो जाओ। रुकने की जगह आ गई है।"

सब आँख मलते खड़े रह गए थे। जो देख रहे थे उस पर विश्वास नहीं हुआ।

सौम्या शुक्ला

कागभगोड़ा

- अखबार को घुड़ी-मुड़ी कर गेंद जैसा बना लो।

- इसे एक पन्नी में रखकर इसके मुँह को धागे या पतले तार से बाँध लो।
- छोटी लकड़ियों या टहनियों को पतले तार से बाँधकर क्रॉस या सूली का आकार बनाओ और फिर चित्र में दिखाए तरीके से उसे एक पन्नी पहना दो।

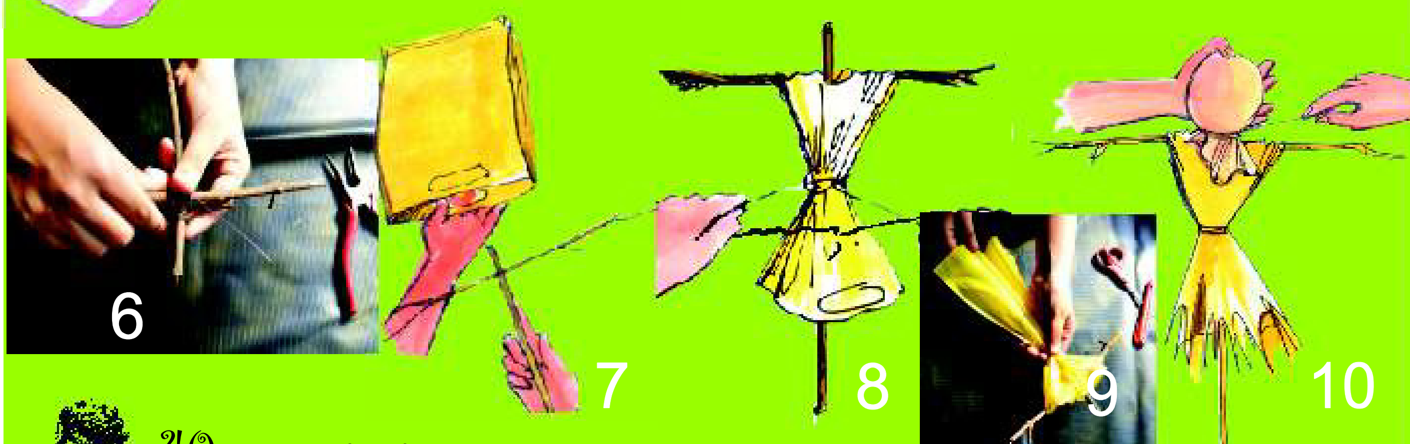

11

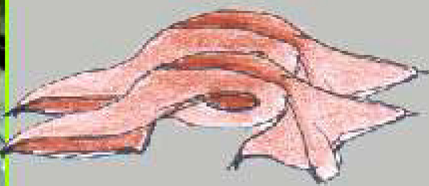

- क्रॉस पर सिर को अच्छी तरह से कस दो, और फिर उसकी गर्दन पर एक कपड़े को लपेट दो।

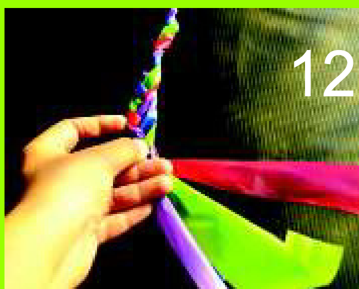

12

13

- रंग-बिरंगी पन्नियों की पतली-पतली कतरनों से चोटी गूँथ लो। इस चोटी को काकभगोड़े की गर्दन के पीछे से आगे की ओर ले आओ और कमर के आसपास लपेट लो।

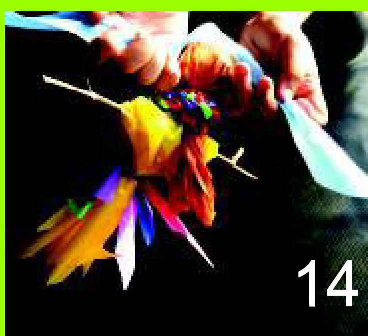

14

- कागभगोड़े के सिर पर एक कपड़ा या पन्नी बाँध लो।

15

- गत्ते और थर्माकॉल को गोल आकार में काटकर दोनों को आपस में चिपका लो। बेस बनाने के लिए इसे हरे रंग की पन्नी से ढँक लो।

अपने काकभगोड़े को इसके ऊपर लगाकर अपने बगीचे में खड़ा कर दो।

बोली रंगोली

चुनिन्दा पन्द्रह चित्र

1 वैष्णवी सिंह, दसवीं, भुज, गुजरात
2 मेहा यादव, पाँचवीं, गुड़गाँव
3 वीना, नवमीं, मंज़िल, दिल्ली
4 कशिश गुप्ता, सातवीं, पुणे
5 अभिषेक आनन्द, पाँचवीं, पटना
6 सूर्यांश कुमार, पाँचवीं, पटना
7 नमन जैन, चौथी, लुधियाना

बोलीरंगोली

1

8 अयमान अहमद, आठवीं, पटना
9 आदित्य दुबे, भुज गुजरात
10 पीयूष, मंज़िल, दिल्ली
11 शिप्रा सुवर्ना, दसवीं, पटना
12 राजेश्वरी तिवारी, नवमी, भोपाल
13 निकिता, सातवीं, भुज, गुजरात
14 विनय सिंह, सातवीं, भुज, गुजरात
15 भूमिका बंसल, पाँचवीं, लुधियाना

2

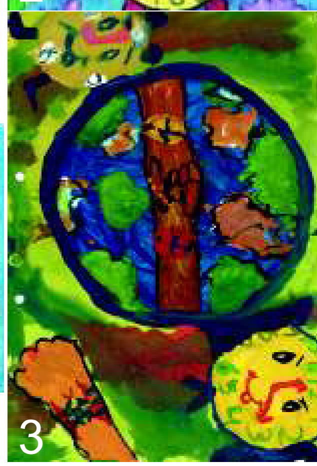
3

4

5

6

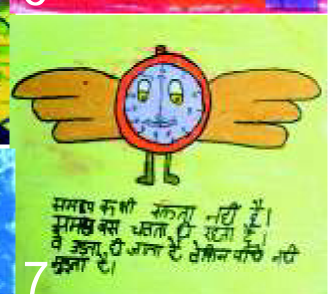
7

8

9

10

11

12

13

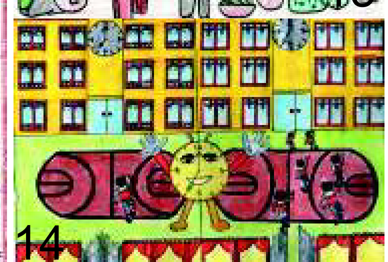
14

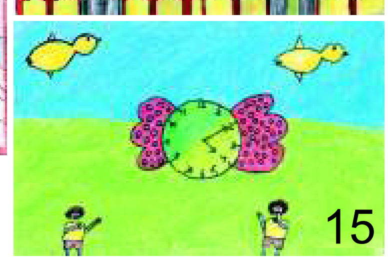
15

चित्र पहेली

► बाएँ से दाएँ ▼ ऊपर से नीचे

RNI क्र. 50309/85 डाक पंजीयन क्र. म.प्र./261/भोपाल/2012-14

जाँबाज़ इरीना...

दूसरे विश्व युद्ध को खत्म हुए 65 से ज़्यादा साल हो गए हैं। यह लेख उन लाखों-करोड़ों यहूदियों, रूसियों, इसाइयों की याद में है जिन्होंने भयानक यातनाएँ सहते हुए अपनी जानें गँवाईं। हम इन्हें याद रखें। हम इन्हें याद इसलिए भी रखें कि ऐसे लोग आज भी हैं जो उस बरबरता को फिर से दोहराने की इच्छा रखते हैं...

दूसरा विश्वयुद्ध चल रहा था। पूरे यूरोप में यहूदी नस्ली हिंसा का शिकार बन रहे थे। नाज़ी (हिटलर की सेना) बड़े पैमाने पर यहूदियों, मानसिक व शारीरिक रूप से कमज़ोर लोगों, बूढ़ों आदि का नरसंहार कर रहे थे। उन्हें यातनाशिविरों में भयानक तकलीफों में रखा जाता और फिर कइयों को गैस चैम्बर में भेज दिया जाता।

ऐसे मुश्किल हालातों में इरीना सैंडलर ने अपने साथियों के साथ एक अनोखा काम किया। उन्होंने पोलैण्ड के वॉरसॉ गैटो (वो जगह जहाँ यहूदियों को कैद रखा जाता था।) में प्रवेश करने की अनुमति पा ली। वे वहाँ सन्निपात (टाइफस) के लक्षणों की पहचान के लिए जाने लगे। उस वक्त टाइफस एक घातक बीमारी मानी जाती थी। और नाज़ियों को इसके बड़े पैमाने पर फैलने का डर था। खैर, इरीना का असली मकसद तो कुछ और था। दरअसल इस काम की आड़ में वे यहूदी बच्चों को वहाँ से निकालना चाहती थीं। ताकि उन्हें तो ज़िन्दगी जीने का मौका मिल सके।

इस बेहद मुश्किल काम को वे और उनके साथी बड़ी चतुराई से अन्जाम देते। गैटो के गेट पर कड़ा पहरा रहता था। तो वे कभी किसी पार्सल में, कभी कफन में, तो कभी बोरों में रखकर बच्चों को बाहर लाते। उनके साथ एक प्रशिक्षित कुत्ता भी रहता। जो उनके गैटो में घुसते और निकलते वक्त ज़ोर-ज़ोर से भौंकने लगता। इससे बोरे या डिब्बों में बन्द बच्चों की आवाज़ें दब जातीं। 1942 से 1943 के बीच उन्होंने इस तरह 2500 बच्चों को बचाया। यह बहुत ही जोखिम और हिम्मत भरा काम था।

पर ऐसा ज़्यादा दिनों तक नहीं चल पाया। एक दिन वो पकड़ी गईं। नाज़ियों ने जम कर उन्हें पीटा और उनके पाँव तोड़ डाले। उन्हें भयानक प्रताड़ना दी गई पर उन्होंने उन बच्चों के बारे में कुछ नहीं बताया। उन्हें मौत की सज़ा मिली। पर वो किसी तरह बच निकलीं। और युद्ध खत्म होने तक छिपी रहीं। इरीना ने इन सारे बच्चों के रिकॉर्ड काँच की एक बोतल में डालकर अपने घर के पीछे के एक पेड़ के नीचे दबा दिए थे। युद्ध खत्म होने के बाद उन्होंने उन बच्चों के ज़िन्दा बचे माँ-पिता को ढूँढने की कोशिश की ताकि परिवारों को मिलाया जा सके। पर अधिकांश लोग गैस चैम्बर में अपनी जान गँवा बैठे थे। गैटो से बचाए बच्चों को उन्होंने उन परिवारों में रख छोड़ा था जो उन्हें पालने की चाह रखते थे। कुछ ने उन्हें गोद भी ले लिया था।

12 मई 2008 में वॉरसॉ, पोलैण्ड में 98 साल की उम्र में इरीना सैंडलर की मृत्यु हुई।

इरीना पर बनी एक फिल्म The Courageous Heart of Irena Sendler (2009) को यू ट्यूब पर देखा जा सकता है।

चित्रः कनक

प्रकाशक एवं मुद्रक अरविन्द सरदाना द्वारा स्वामी रैक्स डी रोज़ारियो के लिए एकलव्य, ई-10, शंकर नगर, 61/2 बस स्टॉप के पास, भोपाल 462016, म.प्र. से प्रकाशित एवं आर. के. सिक्युप्रिन्ट प्रा. लि. प्लॉट नम्बर 15-बी, गोविन्दपुरा इंडस्ट्रियल एरिया, गोविन्दपुरा, भोपाल - 462021 (फोनः 0755 - 2687589) से मुद्रित।
सम्पादकः सुशील शुक्ल